जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535

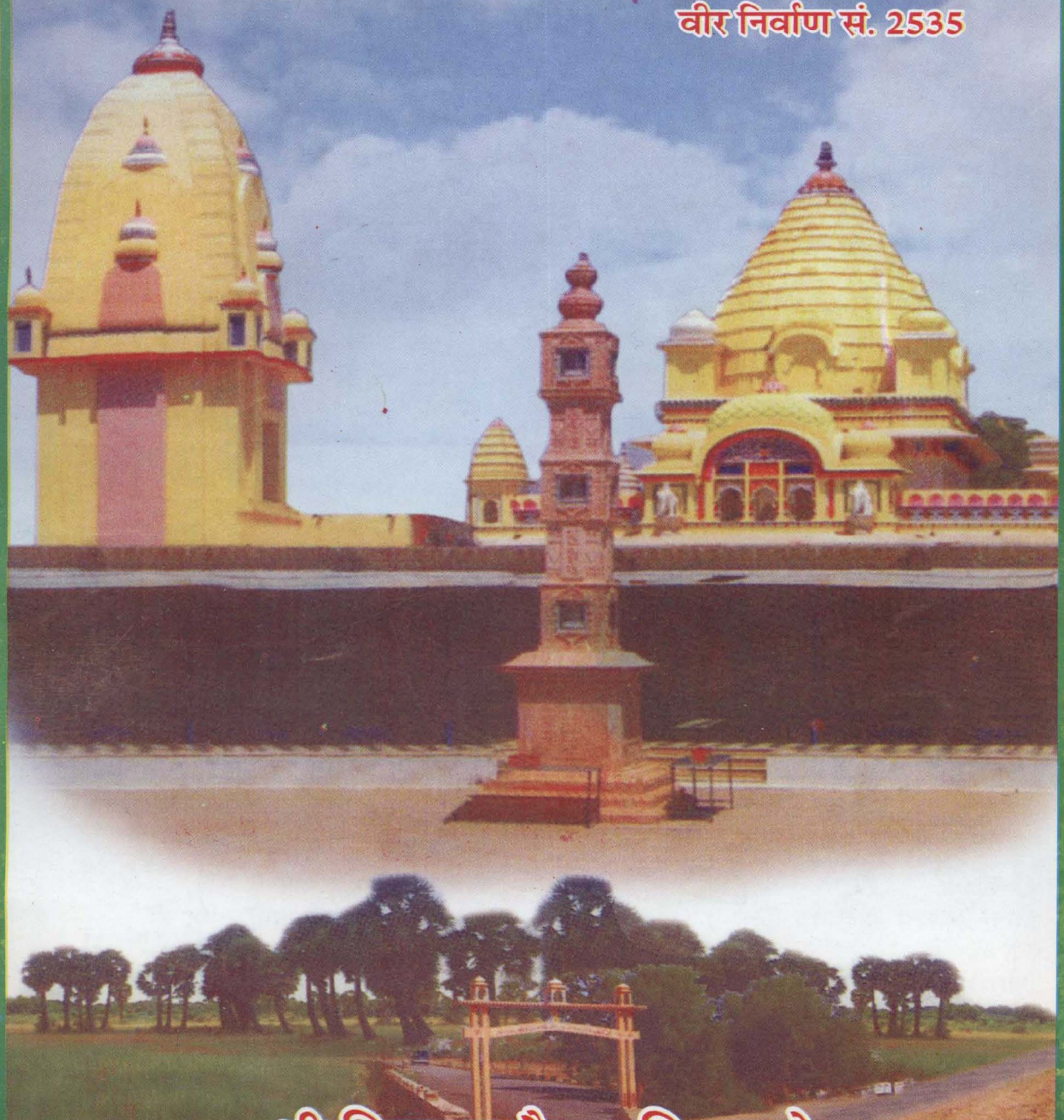

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
बंधा जी (टीकमगढ़, म.प्र.)

वैशाख, वि.सं. 2066 — अप्रैल, 2009

मूल्य 15/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

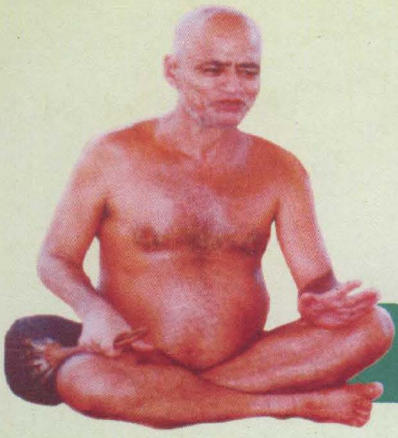

सत्-युग और कलियुग

आचार्य श्री विद्यासागर जी

मछली और माटी के संवाद के माध्यम से महाकवि की लेखनी द्वारा
सत्-युग और कलियुग के स्वरूप का सटीक उद्घाटन

यहाँ पर इस युग से
यह लेखनी पूछती है
कि
क्या इस समय मानवता
पूर्णतः मरी है?
क्या यहाँ पर दानवता
आ उभरी है....?
लग रहा है कि
मानवता से दानवत्ता
कहीं चली गई है?
और फिर
दानवता में दानवत्ता
पली ही कब थी वह?
'वसुधैव कुटुम्बकम्'
इस व्यक्तित्व का दर्शन-
स्वाद-महसूस
इन आँखों को
सुलभ नहीं रहा अब...!
यदि वह सुलभ भी है
तो भारत में नहीं,
महा-भारत में देखो!
भारत में दर्शन स्वारथ का होता है।
हाँ-हाँ!
इतना अवश्य परिवर्तन हुआ है
कि
'बसुधैव कुटुम्बकम्'
इसका आधुनिकीकरण हुआ है
वसु यानी धन-द्रव्य
धन ही कुटुम्ब बन गया है
धन ही मुकुट बन गया है जीवन का।
अब मछली कहती है माटी से-
'कुछ तुम भी कहो, माँ!
कुछ और खोल दो
इसी विषय को, माँ!'
सो मछली की प्रार्थना पर
माटी कुछ सार के रूप में कहती है-
सुनो बेटा!
यही
कलियुग की सही पहचान है
जिसे
खरा भी अखरा है सदा
और
सत्-युग तू उसे मान
बुरा भी
'बूरा'-सा लगा है सदा।
पुनः बीच में ही
निवेदन करती है मछली
कि
विषय गहन होता जा रहा है
जरा सरल करो ना!
सो माँ कहती है
समझने का प्रयास करो, बेटा!
सत्-युग हो या कलियुग
बाहरी नहीं
भीतरी घटना है वह
सत् की खोज में लगी दृष्टि ही
सत्-युग है, बेटा!
और
असत्-विषयों में डूबी
आ-पाद-कण्ठ
सत् को असत् माननेवाली दृष्टि
स्वयं कलियुग है, बेटा!

मूकमाटी (पृष्ठ ८१-८३) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

अप्रैल 2009 मासिक वर्ष 8, अङ्क 4

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ काव्य : सत्-युग और कलियुग
: आचार्य श्री विद्यासागर जी आ.पृ. 2

◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 3

◆ मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ आ.पृ. 4

◆ **सम्पादकीय** : नवग्रह-प्रकोप : एक मिथ्या अवधारणा 2

◆ **प्रवचन** : कालद्रव्य प्रभावक नहीं (प्रथम अंश)
: आचार्य श्री विद्यासागर जी 7

◆ **लेख**

- बीसवीं सदी में जैनों की उपलब्धियाँ
: स्व० पं० माणिकचन्द जी कौन्देय 12
- परमात्मा कहाँ कौन ? : पं० नाथूलाल जी जैन शास्त्री 16
- तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन : पं० महेशकुमार जैन, व्याख्याता 18
- आस्थाओं को नकारती ये मोबाइल घंटियाँ 21
- दिगम्बरो! आओ! अपने सिद्धक्षेत्र बचायें
: प्राचार्य डॉ० नेमिचन्द्र जैन 22
- वृद्धों के भरण-पोषण पर हुई कार्यशाला
: जसवीर राणा 24
- पठन-पाठन में समाविष्ट विकृतियाँ 26
- श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, दुधई
: आशीष कुमार जैन शास्त्री 28

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 29

◆ **समाचार** 23, 25, 27, 28, 31, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

नवग्रह-प्रकोप : एक मिथ्या अवधारणा

मेरे पास दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र माँगीतुंगी जी से एक निमंत्रणपत्र आया है, जिसमें शनिवार २५ अप्रैल २००९ को शनिग्रह-प्रकोप-निवारक भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के महामस्तकाभिषेक की सूचना है और आग्रह किया गया है कि भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के दर्शन-अभिषेक से शनिग्रह का प्रकोप दूर होता है, अतः सपरिवार पधारकर महामस्तकाभिषेक में शामिल हों।

आजकल प्रायः सभी दिगम्बर-जैनमन्दिरों में **नवग्रह-अरिष्टनिवारक विधान** नाम की छोटी सी पुस्तिका देखने को मिल जायेगी, जिसके लेखक कविवर मनसुखसागर जी हैं। ये लगभग १०० वर्ष पूर्व हुए थे, ऐसा इस पुस्तिका की श्री बालमुकुन्द जी दिगम्बरदास जैन, सिहौर छावनी द्वारा वीरनिर्वाण संवत् २४४६ (आज से ८९ वर्ष पूर्व) में लिखित प्रथमावृत्ति की प्रस्तावना से ज्ञात होता है। इसका तात्पर्य यह है कि लगभग १०० वर्ष से दिगम्बरजैन-परम्परा में नवग्रह पूजा प्रचलित है।

आज तो मुनिराजों के आशीर्वाद से इन्दौर (म० प्र०), जयपुर आदि कुछ नगरों मे नवग्रह-मन्दिर भी बन गये हैं, जिनमें नियमितरूप से नवग्रहपूजा होती हैं।

यह जिनशासन की विडम्बना ही है कि इसमें समय-समय पर जिनागम-विरुद्ध मिथ्या मान्यताओं एवं मिथ्या-प्रवृत्तियों का प्रवेश होता रहा है और वे पल्लवित-पुष्पित होती रही हैं।

सर्वप्रथम इसमें सांसारिक सुखों एवं धनसमृद्धि की आकांक्षा से शासन देव-देवियों की पूजा का प्रवेश हुआ। फिर आठवीं शती ई० के आदिपुराणकर आचार्य जिनसेन ने जिनशासन में अग्निपूजा का प्रवेश कराने की चेष्टा की। आगे चलकर एक वास्तुशास्त्रीय मिथ्यात्व जिनशासन में प्रविष्ट हुआ। जिनागम का वचन है कि "जीव के लौकिक सुख-दुःख, रोग-आरोग्य, समृद्धि-दारिद्र्य आदि के हेतु उसके स्वोपार्जित साता-असातावेदनीय नामक कर्म हैं।" किन्तु कुछ नवोदित जैनवास्तुशास्त्रियों ने इस आगमवचन को ताक पर रखकर यह मान्यता प्रचलित की है कि मनुष्य के सुख-दुःख, रोग-आरोग्य, समृद्धि-दारिद्र्य, अपमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय आदि का कारण वास्तुशास्त्र के अनुकूल और प्रतिकूल निर्मित गृह में वास करना है। उसके बाद नवग्रहपूजा के मिथ्यात्व ने जिनशासन में कदम रखा। इसने भी जिनोपादिष्ट कर्मसिद्धान्त को पृष्ठभूमि में डालकर यह मिथ्या मान्यता चलाई है कि मनुष्यों के दुःख, रोग, दारिद्र्य, अपमृत्यु आदि अरिष्ट सूर्य, चन्द्र, शनि आदि नौ ग्रहों के कुपित होने से उत्पन्न होते हैं और उनका यह प्रकोप उनकी पूजा करने से शान्त हो जाता है।

अब एक नये मिथ्यात्व का जैनधर्म में प्रवेश कराया गया है, वह है नवरात्रोत्सव। इस की चर्चा जिनभाषित के फरवरी २००९ के अंक में की गयी है और वास्तुशास्त्रगत मिथ्यात्व का प्ररूपण जनवरी २००९ के 'जिनभाषित' मे किया गया है। यहाँ जिनशासन में नवग्रहपूजा के प्रवेश पर चिन्तन किया जा रहा है।

हिन्दू-ज्योतिषशास्त्रीय मान्यताएँ

भोपाल (म०प्र०) से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र 'पत्रिका' (रविवार, १५ मार्च, २००९) में पृष्ठ १३ पर श्री नोरतन बाफना लिखते हैं- "ज्योतिषशास्त्र के द्वारा बीमारियों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर अलग-अलग ग्रहों का प्रभाव होता है। ग्रह से प्रभावित अंग पर ही रोग, तब उत्पन्न होता है, जब ग्रह की दशा या अन्तर्दशा आती है। शुभ ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में शुभ फल मिलते हैं और अशुभ ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा होने पर पीड़ा या रोग होने की संभावना होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आयुर्वेद के अनुसार रोग त्रिदोषात्मक होते हैं और ग्रह भी अपनी प्रकृति के कारण वात, पित्त और कफ विकार उत्पन्न करते हैं। शरीर में जब किसी भी प्रकार का विकार अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाता है, तो वही रोग का कारण बनता है। रोग-शमन के लिए यदि ग्रहों की शान्ति के उपाय कर लिये जायँ, तो रोग से मुक्ति मिलना संभव है। ग्रहजनित रोग और उसकी शान्ति के उपाय क्या हैं, आइये इस पर विचार करें-

''**सूर्य**- हृदय, पेट, पित्त दायीं आँख, घाव, गिरना, रक्तप्रवाह में बाधा, क्षयरोग आदि, अशुभ सूर्य का वजह से होते हैं। इसके लिए रुद्राभिषेक करायें, सूर्यस्तोत्र का पाठ या सूर्यमंत्र का जप कर लें।

''**चन्द्र**- यदि चन्द्र अनिष्टकारी हो, तो बायीं आँख, छाती, दिमाग की परेशानी, महिलाओं में अनियमित मासिकचक्र जैसे विकार उत्पन्न कर सकता है। इससे बचने के लिए माँ दुर्गा की उपासना, चन्द्रमंत्र का जप या शिव-आराधना कर लें।

इन उद्गारों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू-मान्यता के अनुसार जीवों के जो भी सुख-दुःख, हानि-लाभ होते हैं, वे ग्रहों के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। यहाँ श्री नोरतन जी बाफना के लेख से केवल दो ग्रहों के प्रभाव उद्धृत किये हैं, शेष विस्तारभय से छोड़ दिये हैं।

जैनमत मे प्रविष्ट ग्रहसम्बन्धी मान्यताएँ

उपर्युक्त हिन्दू-मान्यता के अनुसार जैनमत में भी नये पण्डितों एवं मुनियों के द्वारा ग्रहों को शुभ-अशुभ मानकर जीवों के सुख-दुःख का कर्त्ता मान लिया गया है और यह मान्यता भी स्वीकार कर ली गयी है कि ग्रहों के द्वारा उत्पन्न किये गये अरिष्ट (दुःख) ग्रहों की पूजा से दूर हो जाते हैं।

चूँकि हिन्दूधर्म में ग्रहपूजा के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न देव-देवियों की पूजा से भी भिन्न-भिन्न ग्रहों के प्रकोप का शान्त होना बतलाया गया है, इसलिए जैनधर्म में भी ग्रहपूजा के साथ भिन्न-भिन्न ग्रह की शान्ति के लिए भिन्न-भिन्न तीर्थंकर की पूजा को आवश्यक मान लिया गया। जैसे तीर्थंकर पद्मप्रभ को सूर्यग्रह-अरिष्टनिवारक, चन्द्रप्रभ को चन्द्र-अरिष्ट-निवारक, वासुपूज्य को मंगल-अरिष्टनिवारक, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ और महावीर इन आठ को बुधग्रह-अरिष्टनिवारक, ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ इन आठ को गुरुग्रह-अरिष्टनिवारक, पुष्पदन्त को शुक्र-अरिष्टनिवारक, मुनिसुव्रत को शनि-अरिष्टनिवारक, नेमिनाथ को राहु-अरिष्टनिवारक तथा मल्लिनाथ एवं पार्श्वनाथ भगवान् को केतु-अरिष्टनिवारक मान लिया गया है। (देखिये, कविवर मनसुखसागर-कृत 'नवग्रह-अरिष्टनिवारक-विधान')।

कविवर मनसुखसागर को यह अहसास था कि जैनधर्म में पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त अन्य देव-देवियों की पूजा को मिथ्यात्व माना गया है, इसलिए उन्होंने इस मान्यता का निषेध करने के लिए उक्त पुस्तक में जोर देकर कहा है कि जिनपूजा के प्रसंग में ग्रहपूजा मिथ्या नहीं है- **'जिनपूजा में ग्रहन की पूजा मिथ्या नाहिं।'** (पृष्ठ १)। ग्रहपूजा के वर्णन का संकल्प करते हुए वे उक्त पुस्तिका के आरंभ में लिखते हैं-

प्रणम्याद्यन्ततीर्थेशं धर्मतीर्थप्रवर्तकं, भव्यविघ्नोपशान्त्यर्थं ग्रहार्च्या वर्ण्यते मया।
मार्त्तण्डेन्दुकुजसोम्य-सूरसूर्यकृतान्तकाः, राहुश्च केतुसंयुक्तो ग्रहशान्तिकरा नव॥

अनुवाद-''धर्मतीर्थ के प्रवर्तक आदि और अन्तिम (अथवा आदि से लेकर अन्त तक के) तीर्थंकरों को प्रणाम कर मैं ग्रहपूजा का वर्णन करता हूँ, जो सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नवग्रहों को शान्त करती है।''

यहाँ **'ग्रहार्च्या वर्ण्यते मया'** इन स्पष्ट शब्दों में ग्रहपूजा के वर्णन की प्रतिज्ञा की गयी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोदय को ग्रहों के अधीन कर दिया गया

चूँकि जिनागम में जीव के स्वकीय साता-असाता-वेदनीय कर्मों के उदय को जीव के लौकिक सुख-दुःख, सम्पन्नता-विपन्नता, सरोगता-नीरोगता आदि का हेतु बतलाया गया है, इससे ग्रहों के उदय को जीव के सुख-दुःख आदि का हेतु बतलाया जाना असत्य सिद्ध होता है। अतः ग्रहपूजा-प्रवर्तक जैन ज्योतिषियों ने यह मिथ्या युक्ति उपस्थित की है, कि जीव के कर्मों का उदय ग्रहों के अनुसार होता है। अर्थात् जब शुभ ग्रह का उदय होता है, तब जीव के सातावेदनीय कर्म का उदय होता है और जब अशुभ ग्रह का उदय होता है, तब असातावेदनीय कर्म उदय में आता है। इस प्रकार जीव के सुख-दुःख ग्रहों के हाथ में हैं। देखिये, कवि मनसुखसागरकृत 'नवग्रह-अरिष्टनिवारक-विधान' (पृष्ठ १) के ये शब्द-

आदि अन्त जिनवर नमो, धर्म प्रकाशन हार।
भव्य-विघ्न-उपशान्त को ग्रहपूजा चितधार॥
कालदोष परभावसों विकलप छूडे नाहिं।
जिनपूजा में ग्रहन की पूजा मिथ्या नाहिं॥
इस ही जम्बूद्वीप में रवि-शशि मिथुन प्रमान।
ग्रह नक्षत्र तारा - सहित ज्योतिषचक्र प्रमान॥
तिन ही के अनुसार सौं कर्मचक्र की चाल।
सुखदुख जाने जीव को, जिनवच नेत्र विशाल॥

कोई भी ग्रह शुभ या अशुभ नहीं

ग्रहों के पूजनीय होने की मिथ्या धारणा किसी ग्रह को शुभ और किसी को अशुभ अथवा एक ही ग्रह को किसी दशा में शुभ और किसी दशा में अशुभ मान लेने से उत्पन्न हुई है। जब किसी ग्रह को शुभ (शुभफल देनेवाला) मान लिया जायेगा और किसी को अशुभ (अशुभफल देनेवाला), तब कृतज्ञतावश शुभग्रह की पूजा का भाव मन में आयेगा ही और भयवश अशुभ ग्रह के प्रकोप को शान्त करने के लिए उसकी पूजा का भाव हृदय में आये बिना नहीं रहेगा, क्योंकि यह मानवस्वभाव है।

जैन कर्मसिद्धान्त के अनुसार विचार करने पर सिद्ध होता हे कि कोई भी ग्रह या नक्षत्र न शुभ होता है और न अशुभ। जैन कर्मसिद्धान्त बतलाता है कि जीव को शारीरिक सुख, धनधान्य, पुत्रकलत्रादि शुभ फल साता-वेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं और सातावेदनीय कर्म का बन्ध जीव के स्वकीय शुभपरिणामों से होता है और शुभपरिणामों की उत्पत्ति परमार्थ देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, पंचपरमेष्ठी की उपासना, जिनबिम्बदर्शन, स्वाध्याय अनुकम्पाभाव, अणुव्रतादि के पालन तथा मन्दमिथ्यात्व-मन्दकषायभाव से होती है, अतः पंचपरमेष्ठी, जिनबिम्ब, जिनालय आदि ही शुभ द्रव्य हैं। ग्रह-नक्षत्र तो मिथ्यादृष्टि, असंयमी ज्योतिष्क देव हैं, अतः उनके दर्शन-पूजन से शुभपरिणामों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सूर्य, चन्द्र और तारों के दर्शन तो हमें दुर्लभ हैं, उनके विमानों को ही हम प्रतिदिन देखते हैं, लेकिन उन्हें देखकर हमारे मन में शुभपरिणाम उत्पन्न नहीं होते। अतः वे शुभ द्रव्य नहीं है। इसी प्रकार उनके दर्शन से अशुभपरिणाम भी उत्पन्न नहीं होते, इसलिए वे अशुभ द्रव्य भी नहीं हैं। इस तरह वे हमारे लिए न शुभफल की प्राप्ति में सहायक होते हैं, न अशुभफल की। फलस्वरूप वे किसी भी प्रकार पूजा के योग्य नहीं हैं। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ज्योतिषाचार्य भी मानते हैं कि "ग्रह या अन्य प्राकृतिक कारण किसी व्यक्ति का इष्ट-अनिष्ट-सम्पादन नहीं करते, बल्कि इष्ट या अनिष्टरूप में घटित होनेवाली भावी घटनाओं की सूचना देते हैं।" (प्रस्तावना / भद्रबाहु-संहिता / पृष्ठ १९ / भारतीय ज्ञानपीठ)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रह साता-असातावेदनीय के उदय में निमित्त भी नहीं

जैन कर्मसिद्धान्त के अनुसार ग्रहों को जीव के सुख-दुःख का उत्पादक सिद्ध करने के लिए ग्रहपूजाप्रवर्तक जैन विधानाचार्यों ने यह युक्ति प्रस्तुति की है, कि शुभाशुभ ग्रहों के उदय से प्रेरित होकर ही जीवों के साता-असातावेदनीय कर्मों का उदय होता है। किन्तु यह युक्ति जिनागम-विरुद्ध है। जिनागम के अनुसार साता-असातावेदनीय कर्मों का उदय तभी होता है, जब उनके उदय के अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या भव उपस्थित होते हैं। और यह आगम द्वारा निर्धारित है कि कौन सा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भव सातावेदनीय के उदय के अनुकूल होता है और कौन सा असातावेदनीय के उदय के अनुकूल।

कर्मसिद्धान्त के विशेषज्ञ मनीषी पं० रतनचन्द्र जी मुख्तार इस प्रश्न का समाधान करते हुए लिखते हैं- ''कार्य के लिए अन्तरंग और बहिरंग दोनों कारणों की आवश्यकता होती है। कर्मोदय भी कार्य है; अतः कर्मोदय के लिए भी बाह्य द्रव्य, क्षेत्र आदि की आवश्यकता है। कसायपाहुडसुत्त-गाथा ५९ के उत्तरार्ध में कहा है-''**खेत्तभवकालपोग्गलट्ठिदिविवागोदयखयदु।**'' इसकी विभाषा करते हुए चूर्णिसूत्रकार चूर्णिसूत्र २२० में लिखते हैं- ''**कम्मोदयो खेत्तभवकालपोग्गलट्ठिदिविवागोदयक्खओ भवदि।**'' अर्थात् कर्मोदय क्षेत्र, भव, काल और पुद्गलद्रव्य के आश्रय से स्थिति के विपाकरूप होता है, इसी को उदय या क्षय कहते हैं।''

''**क्षेत्र** पद से नरकादि क्षेत्र का, **भव** पद से जीवों के एकेन्द्रियादिक भवों का, **काल** पद से शिशिर, वसन्त आदि काल का अथवा बाल, यौवन, वार्धक्य आदि कालजनित पर्याय का और **पुद्गल** पद से गन्ध, ताम्बूल, वस्त्र, आभरण आदि इष्ट-अनिष्ट पदार्थों का ग्रहण होता है। सारांश यह है कि द्रव्य, क्षेत्र काल भव आदि का निमित्त पाकर कर्मों का उदय और उदीरणारूप फलविपाक होता है।'' (पं० रतनचन्द्र मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व / भाग १ / पृष्ठ ४४५)।

गोम्मटसार-कर्मकाण्ड में भी कहा गया है कि साता-वेदनीय के उदय के नोकर्म (निमित्तभूत पुद्गलद्रव्य) इष्ट (रुचिकर) भोजन-पान आदि तथा असातावेदनीय के उदय के नोकर्म अनिष्ट (अरुचिकर) भोजन-पान आदि हैं-'**सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि।**' (गाथा ७३)।

पं० रतनचन्द्र जी मुख्तार आगे लिखते हैं-''साता और असाता, दोनों का आबाधाकाल समाप्त हो जाने से एक साथ दोनों प्रकृतियों के निषेक उदय होने योग्य होते हैं। किन्तु इन दोनों प्रकृतियों में से एक का स्वमुख उदय (फलानुभवन) होगा और दूसरी प्रकृति का परमुख उदय होगा। इन दोनों प्रकृतियों में से जिसके अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव होंगे, उसी का फलानुभवनरूप स्वमुख उदय होगा और दूसरी प्रकृति का स्तिबुकसंक्रमण के द्वारा परमुख उदय होगा।'' (उपर्युक्त ग्रन्थ / भाग १ / पृ०४४६)।

यहाँ दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। पहली यह कि कसायपाहुडसुत्त, उसकी चूर्णि तथा गोम्मटसार-कर्मकाण्ड में कर्मोदय के जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव रूप बाह्य हेतु बतलाये गये हैं, उनमें **द्रव्य के अन्तर्गत केवल पुद्गलद्रव्य को लिया गया है,** अन्य द्रव्यों को नहीं। दूसरी यह कि **साता-असातावेदनीय कर्मों के उदय में उसी पुद्गलद्रव्य को बाह्य हेतु बतलाया गया है, जो जीव के लिये इष्ट (रुचिकर, प्रिय) और अनिष्ट (अरुचिकर, अप्रिय) होता है, अन्य को नहीं।** चूँकि ग्रह-नक्षत्र पुद्गल द्रव्य नहीं हैं, अपितु जीव द्रव्य हैं, इसलिए वे उपर्युक्त आर्षवचनों के अनुसार साता-असातावेदनीय कर्मों के उदय के लिए अनुकूल निमित्त या नोकर्म नहीं हैं। और यदि जीवद्रव्य को भी साता-असाता के उदय का निमित्त माना जाय तो भी ग्रह-नक्षत्र साता-असाता कर्मों के उदय के लिए अनुकूल द्रव्य नहीं हो सकते, क्योंकि वे जीव को न मित्र के समान इष्ट (प्रिय) लगते हैं न शत्रु के समान अनिष्ट (अप्रिय)। इस कारण असातावेदनीय के उदय में हेतु न बन पाने से उनके द्वारा जीव के लिए कोई भी अरिष्ट (दुःख या विपत्ति) उत्पन्न नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप अरिष्ट-निवारण के लिए उनकी पूजा व्यर्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी तीर्थंकरों की पूजा समान शुभपरिणामोत्पादक

'नवग्रह-अरिष्टनिवारक विधान' में व्यक्त की गयी यह मान्यता भी आगमविरुद्ध है कि भिन्न-भिन्न तीर्थंकर भिन्न-भिन्न ग्रह से उत्पन्न अरिष्ट के निवारक हैं। वस्तुतः कोई भी तीर्थंकर किसी भी जीव के अरिष्ट या दुःख के निवारक नहीं होते, अपितु प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक उनके दर्शन-पूजन से जीव में जो शुभपरिणाम उत्पन्न होते हैं, उनसे उसके असातावेदनीय का उदय टलता है और साता-वेदनीय का उदय होता है। इससे उसके दुःख या विपत्ति का निवारण होता है। और ऐसा नहीं है कि तीर्थंकर पद्मप्रभ की पूजा से केवल सूर्यग्रहजनित अरिष्ट के निवारक शुभपरिणाम पैदा होते हों और चन्द्रादि ग्रहों से जनित अरिष्ट का निवारण करनेवाले शुभपरिणाम उत्पन्न न होते हों। सभी तीर्थंकर समानरूप से वीतराग होते हैं। अतः किसी भी तीर्थंकर की पूजा से एक ही जैसे शुभपरिणामों की उत्पत्ति होना अनिवार्य है, जो **समानरूप से असातावेदनीय के उदय को टालते हैं और सातावेदनीय का उदय कराते हैं, जिससे किसी भी प्रकार के निमित्त से उत्पन्न दुःख का निवारण होता है। किसी तीर्थंकर की पूजा में किसी खास** ग्रह से उत्पन्न अरिष्ट का निवारण करनेवाले शुभपरिणामों की उत्पत्ति की सामर्थ्य मानना, अन्यग्रहजनित-अरिष्ट-निवारक शुभपरिणामों की उत्पत्ति की सामर्थ्य न मानना, तीर्थंकरों की वीतरागता को अलग-अलग प्रकार का मानना है, जो महामिथ्या मान्यता है। इस मिथ्या मान्यता के कारण या ग्रहों को शान्त करने **के लिए तीर्थंकरविशेष की पूजा मिथ्या क्रिया है।**

किसी ग्रह को किसी अन्य ग्रह का पुत्र मानना आगमविरुद्ध

'नवग्रह-अरिष्टनिवारक विधान' में शनिग्रह को सूर्य का पुत्र और बुध को चन्द्र का पुत्र बतलाया गया है। यथा-

'शनि-अरिष्टनिवारक श्री मुनिसुव्रत पूजा' के अन्तर्गत पूजा के निम्नालिखित पद कहे गये हैं-

''जन्म लग्न गोचर समय, रविसुत पीड़ा देय।
तब मुनिसुव्रत पूजिये, पातक नाश करेय॥
मुनिसुव्रत जिनराज काज निज करन को,
सूर्यपुत्र ग्रह क्रूर अरिष्ट जु हरन को।
आह्वानन कर तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः करो,
होय सन्निधि जिनराय भव्य पूजा करो॥

ऊँ ह्रीं शनि-अरिष्टनिवारक श्री मुनिसुव्रत जिन अत्र अवतर अवतर---।''

बुधग्रह-अरिष्टनिवारक अष्ट-जिन-पूजा में बुधग्रह को शशि (चन्द्र) का पुत्र कहा गया है-

शशि-सुत अरिष्ट सब दूर जाय।
भव पूजे अष्ट जिनेन्द्र पाय॥

यह हिन्दूधर्मगत मान्यता का अनुकरण है। जिनशासन में चारों निकायों के देवों को उपपाद-जन्मवाला माना गया है, गर्भजन्मवाला नहीं। अतः देवों के माता-पिता नहीं होते। 'नवग्रह-अरिष्टनिवारक-विधान' में एक ग्रह को दूसरे ग्रह का पुत्र मानना जिनागमविरुद्ध है।

इस प्रकार जैनमत में नवग्रहपूजा जिन मान्यताओं पर खड़ी की गई है, वे सब अजैन मान्यताएँ हैं, जैन नहीं। ग्रहों को शुभ-अशुभ मानकर उन्हें शुभ-अशुभ फलदायक मानना और अशुभ फल-निवारण के लिए उनकी पूजा करना या भिन्न-भिन्न तीर्थंकर को भिन्न-भिन्न ग्रह के अरिष्ट का निवारक मानकर उनकी पूजा से अरिष्ट-निवारण मानना, ये मिथ्या मान्यताएँ हैं। **इन मान्यताओं को निर्मल जिनशासन में ढकेलकर उसे मलिन बनाने का प्रयत्न और जीवों के मिथ्यात्ववर्धन का काम किया जा रहा है।**

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालद्रव्य प्रभावक नहीं

आचार्य श्री विद्यासागर जी

विद्वानों के विनम्र अनुरोध पर, उनकी महत्त्वपूर्ण जिज्ञासाओं के समाधान हेतु परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की स्वीकृति पाकर श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह, म०प्र०) में दि० १४ मई २००७ से १६ मई २००७ तक प्रथम श्रुताराधना-शिविर आयोजित हुआ था। उसमें आचार्यश्री ने प्रतिदिन पूर्वाह्न और अपराह्न में दो-दो घंटे चार विषयों पर पाँच प्रवचन किये थे, जो अत्यन्त शोधपूर्ण, हृदयस्पर्शी और अज्ञानान्धकार-विनाशक थे।

पहले दिन दोनों प्रवचनों का विषय कालद्रव्य था। आचार्यश्री ने उद्घोष किया कि द्रव्यों के परिणमन में काल-द्रव्य मात्र उदासीन निमित्त होता है, प्रभावक या उत्प्रेरक नहीं होता। अर्थात् वह जीवों के उपादान में कोई अच्छा-बुरा परिवर्तन नहीं करता, न उनके कार्य में कोई बाधा या सुविधा उपस्थित करता है, न ही उनके पौरुष या शुभाशुभ कर्मों के उदय को प्रेरित करता है, अपितु उपादान जैसा होता है, उसी रूप में उसके परिणमन में सहायक होता है। शीतग्रीष्मादिकाल-निमित्तक साता-असातावेदनीय का उदय वस्तुतः पुद्गल की शीतादिपर्याय के निमित्त से होता है, साहचर्य के कारण काल पर उसके उदयनिमित्तत्व का आरोप किया जाता है। इसी प्रकार अधिकरणभूत जिस काल में शुभाशुभ फलदायक शुभाशुभ कर्म का उदय होता है, उस काल पर शुभाशुभत्व का आरोप किया जाता है। अतः सम्यक्त्व और मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी कालविशेष की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि आत्मोपादान को ही सम्यक्त्व और मोक्ष की प्राप्ति के योग्य बनाने का पौरुष करना चाहिए। आत्मपौरुष से जिस काल में आत्मोपादान सम्यक्त्व या मोक्ष की प्राप्ति के योग्य बन जाता है, वही काल काललब्धि संज्ञा पा लेता है। इसी कारण आगम में काल को हेय कहा गया है।

(रतनचन्द्र जैन) सम्पादक

कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो अपना प्रभाव तो रखते हैं, लेकिन सामने नहीं रहते। कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो सामने तो रहते हैं, किन्तु प्रभावक नहीं होते। प्रत्येक कार्य जब कभी होता है, तो **उसमें काल निमित्त अवश्य पड़ता है लेकिन वह प्रभावक नही होता है,** ऐसा हम समझते हैं। इस प्रकार की बात कह करके शायद हम कई लोगों की धारणायें कुण्ठित कर रहे हैं।

काल द्रव्य अवश्य है, लेकिन वह प्रभावक नहीं है। प्रभावक का अर्थ है- **'प्रकर्षरूपेण भावं उत्पादयति इति प्रभावकः'** = प्रकर्ष रूप से जो भाव उत्पन्न करा दे उसे प्रभावक कहते हैं। जब हम चेतन द्रव्य की ओर देखते हैं, तो हम उसको प्रभावक नहीं कह सकते हैं, तो फिर हम काल द्रव्य को कैसे प्रभावक कहें, तथापि हम उसको हमेशा आरोप के लिए पात्र चुन लेते हैं। काल पर यह आरोप ठीक नहीं है। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान में भी काल को साधन माना गया है परन्तु वैज्ञानिक किस रूप में सफल हुए हैं, इसके बारे में भी हम थोड़ा-बहुत सोचते हैं, तो इस दिशा में उनका जो पुरुषार्थ है, वह नगण्य प्रतीत होता है। काल के विषय में जैनदर्शन ने जो चिन्तन दिया है, वह अद्भुत है। वह कभी समय के अनुसार परिवर्तित नहीं होता।

'निष्क्रियाणि च' (त. सू. ५/७) यह सूत्र आता है। काल निमित्त बनता है। भावों की उत्पत्ति में जैनदर्शन ने इसे निमित्त के रूप में स्वीकार किया है, प्रभावक के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया है। **'युक्त्यनुशासन'** की कारिका में 'वा' शब्द दिया है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वह 'वा' शब्द इतना अर्थगाम्भीर्य रखता है कि वह समन्तभद्र स्वामी के अनेकान्त को सामने लाकर रख देता है। **'कालः कलिर्वा' 'वा'** यही जैनदर्शन में बताया है और इसी बात का चित्रण इस कारिका में समन्तभद्र महाराज जी ने किया है। इसलिए अब हमें किसी भी प्रकार से काल को प्रभावक नहीं बनाना है। काल को जब से हमने प्रभावक के रूप में, उत्प्रेरक के रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में, नियन्ता के रूप में, निधि के रूप में स्वीकारा है, तभी से विद्वानों के माध्यम से यह सारा-का-सारा घोटाला हुआ है। ये सारे-के-सारे प्रकरण पठनीय हैं, चिन्तनीय हैं आज के विद्वद्गण के लिए। धवला जी का स्वध्याय चल रहा था, अभी चल रहा है। चूँकि यह नैमित्तिक कार्यक्रम रखा गया, तो हमने सोचा इन लोगों को भी समय देना चाहिए। हम क्या दे रहे हैं, काल तो दिया भी नहीं जाता और लिया भी नहीं जाता है, सामान्य है। जब सामान्य है, तो जो चीज दी नहीं जाती, ली भी नहीं जाती, तो उसका उपयोग क्या होगा या उसका क्या करना है, भगवान् जाने या आप लोग जानें।

आप समझ रहे हैं कि काल को इतने ऊपर उठा कर क्यों देखा जा रहा है? विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली, लेकिन शुद्ध द्रव्यों के बारे में वैज्ञानिकों ने कोई डेफिनिशन-परिभाषा नहीं दी है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं। अस्तिकाय में तीन द्रव्य हैं और काल को मिलाकर चार द्रव्य होंगे। चार द्रव्यों में काल को अस्तिकाय नहीं माना है। अस्तित्व तो माना है, किन्तु कार्य के रूप में स्वीकार नहीं किया है। विज्ञान ने क्या किया? इतनी उन्नति आप लोगों के सामने लाकर रख दी और कौन-कौन से द्रव्य सहयोग में लिये, सहायक के रूप में लिये हैं, मैं सोचता रहा, पढ़ता रहा, लोगों से पूछता रहा, सुनता भी रहा। वैज्ञानिक जो कोई भी आ जाते हैं, आप लोगों की दृष्टि में आ जाते हैं या आप लोग भेज देते हैं, तो मैं उनसे जानना चाहता हूँ कि काल द्रव्य के बारे में वे क्या विवेचन देना चाहते हैं। मैं थोड़ी सी जिज्ञासा की दृष्टि से मूल तत्त्व के बारे में जानना चाहता हूँ, तो 'नहीं के बराबर' वे विवेचन देते हैं।

किसी द्रव्य के बारे में हमें समझना है, तो उसके गुणधर्म, लक्षण, क्रिया, गुणवत्ता, अस्तित्व का स्थान, अधिकरण आदि-आदि ये कुछ ऐसे साधन हैं, जिनके माध्यम से हमारा प्रवेश उन तक हो सकता है। अँग्रेजी में शब्द है टाइम, अब टाइम क्या होता है? हमने 'काल' कहा। 'टाइम' यह भाषा का परिवर्तन हुआ। चूँकि पढ़ता रहता हूँ, जिज्ञासा रहती है, जिज्ञासा-शांति के लिए श्रुत ही एक मात्र साधन है। जिन्होंने चिन्तन किया, मनन किया और मिला चिन्तन जिन्हें, उसके माध्यम से कुछ अभिव्यक्त हो जाता है, पूरा तो होता नहीं। 'टाइम' कहने मात्र से आप उसे कौनसे द्रव्य की, कौनसे निर्माण में, कौनसी पर्याय की उत्पत्ति में, उन्नति में किस रूप में स्वीकार करते हैं, यह मेरी जिज्ञासा है? मगर कोई उत्तर नहीं मिलता। इतना अवश्य है कि आइंस्टीन की विचारधारा बताकर प्रायः ये सब लोग हमें उत्तर देने का प्रयास करते हैं। काल को उन्होंने स्वीकार किया है और जब काल को उन्होंने स्वीकारा है तो कहीं-न-कहीं उनको प्राचीन ग्रन्थ, सूत्र, तत्त्व, व्याख्या या भाष्य अवश्य मिला होगा, जिस किसी भाषा इत्यादि के माध्यम से या उनके सामने कोई भी व्यक्ति थे, उनके माध्यम से। क्योंकि बिना भाषा के लिपि नहीं हो सकती, लेकिन इसके उपरांत भी उन्होंने काल को सापेक्ष माना है। कभी-कभी कहने में यह आ जाता है और काल निरपेक्ष भी साबित हो जाता है। यहाँ पर हमें थोड़ा सोचना चाहिए।

प्रश्न : काल प्रभावक है या नहीं? **उत्तर** : काल का प्रभाव है महाराज! क्या करें? उत्सर्पिणी है, अवसर्पिणी है, हुण्डावसर्पिणी है।

जो नियामक होता है उसको हमें गौण नहीं करना चाहिए। उसको हमेशा सामने रख करके विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक कार्य में उसका सहायोग आवश्यक होता है तो रखना चाहिए, लेकिन जिसका कोई सहयोग नहीं है, फिर भी अधिकरण के रूप में काम कर रहा है, उसमें भी, करण के रूप में काम कर रहा है, उसमें भी और जो सहयोग के रूप में काम कर रहा है, उसमें भी, और जो सामान्य रूप से काम कर रहा है, उसको भी नियामक मान कर जो समझते हैं, इसमें उनकी जो तत्त्वनिर्णय की दृष्टि है, वह नयविवक्षा न समझने का परिणाम है।

जो कोई भी भूत खड़े होते हैं, वे बुद्धि के माध्यम से खड़े होते हैं, यह निश्चित बात है। उसके माध्यम से बहुत सारे व्यक्ति उसमें लग जाते हैं, युग उनके पीछे जुड़ जाता है, तो वह महाभूत बन जाता है। उसको हटाना फिर बहुत कठिन हो जाता है। हमने भी काल को स्वीकारा है, किन्तु यदि प्रभावक के रूप में स्वीकारा है, तो बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। कारण के रूप में स्वीकारा तो बहुत अच्छी बात है। प्रभावक के रूप में स्वीकारा और विशेष रूप में स्वीकारा तो इसकी छानबीन तो हमें करनी ही पड़ेगी। क्योंकि 'येन विना न भवति' यह एक सूत्र जैसा है। इसके बिना नहीं हो सकता, इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभाव में नहीं हो सकता। यह अनिवार्य हो गया, तो इसका सद्भाव लाओ और इसके बिना नहीं हो सकता तो इसका महाप्रभाव आपने स्वीकारा है। काल के जितने भेद हैं वे महाप्रभावक रहें, ऐसा समझ कर यह महान् गलती हम लोगों के द्वारा हुई है। कुन्दकुन्ददेव ने कहीं भी अपने साहित्य में काल को महाप्रभावक के रूप में नहीं स्वीकारा है।

आचार्य समन्तभद्र ने कारिका में **'प्रवक्तुः श्रोतुः'** ये दो पद दिये हैं। वक्ता का वचन और श्रोता का अभिप्राय ये मुख्य हो गये। ये दोनों विशेष कारण हैं। बाकी जितने हैं काल, कलिकाल, वो, ये, x, y, z सब सामान्य हैं।

अब वक्ता को लीजिए, महाप्रभावक हो गया वक्ता, वक्ता का महान् प्रभाव रहता है। इसलिए वह वक्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है। 'श्रोतुः' श्रोता महान् प्रभावक तो नहीं होता है, लेकिन फिर भी वक्ता और श्रोता के बारे में यहाँ विचार करते हैं।

वक्ता कैसा होना चाहिए और श्रोता कैसा होना चाहिए? वक्ता के गुणधर्म कौन-कौन से हैं? श्रोता के गुणधर्म कौन-कौन से हैं? दोनों के गुणधर्म क्रियाकलाप कैसे हैं? इसके बारेमें हम चर्चा करते हैं। **'कालः कलिर्वा'** हुण्डावसर्पिणी काल तो असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के बाद आता है, यह नियम है। उस हुण्डावसर्पिणी और उत्सर्पिणी में क्या-क्या कार्य होता है, यह कितना लम्बा चौड़ा काल होता है? यह वक्ता और श्रोता पर काल का आरोप आता है। जब भोगभूमि होती है तब 'कालः कलिर्वा' काल का प्रभाव समाप्त हो जाता है। अपन भरत और ऐरावत क्षेत्र में रह रहे हैं। यहाँ पर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में आप लोगों के उत्थान-पतन, आरोहण-अवरोहण, विकास-विनाश का क्रम चल रहा है। **ऐसी स्थिति में आप लोग जिस प्रकार का उपादान लेकर आते हैं, तो काल पर वैसा ही आरोप आता है।** इसको हम एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट करना चाहते है।

महाप्रभावक शब्द काल के लिए दिया है, तो वही कारण है। क्योंकि जड़ की चिकित्सा होती है। जड़ को नापना है तो कैसे नापें? नापने वाला कौन है, बुद्धि के थर्मामीटर का प्रयोग कर सकते हैं, उसके द्वारा हम बहुत जल्दी पहुँच जायेंगे उस तत्त्व तक, बुद्धि के द्वारा ही नापा जायेगा वह तत्त्व, बिना बुद्धि के नहीं। लेकिन अकेली बुद्धि काम नहीं करेगी। अब टेम्प्रेचर को नापने के लिए थर्मामीटर लगाया, लेकिन लगाने के पहले देखो, यह नापने का यंत्र कैसा है? चूँकि गर्मी का समय था, अतः पहले ही टेम्प्रेचर ९८ डिग्री के ऊपर चढ़ गया। गर्मी के कारण या टेम्प्रेचर के कारण ऊपर चढ़ गया, उसको उठाया और मरीज को लगा दिया, अब क्या करें, १०४ डिग्री टेम्प्रेचर है। कैसा करें? **'कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुः वचनाशयोर्वा'**। अब थर्मामीटर बिगड़ गया। पहले थर्मामीटर को उतारा (हाथ के एक्शन पूर्वक) पहले उसकी चिकित्सा कर दी। पारा गरम होता है। पारे को क्यों रखा? सबसे भारी होता है और थर्मामीटर में इतनी बुद्धि नहीं है। उस पारे को खोज करके और थर्मामीटर में बंद करके रख दिया, टेम्प्रेचर का प्रभाव रहा उसके ऊपर। सबसे भारी पदार्थ बहुत जल्दी ऊपर जा सकता है। अब देखो वह भारी भरकम है, उसे उठाने के लिए 'वेट' लगाना पड़ता है। लेकिन आप में बैठा जो क्रोध का व्यक्तित्व, उसे पारा स्वीकार करो। एक शब्द बोला कि पारा गरम हो गया, अब गड़बड़ हो गया अब झटका दो (एक्शन पूर्वक) और ज्यादा गरम हो गया। जितना झटकाएँगे क्रोधी व्यक्ति का पारा और गरम हो जायेगा। न ठण्डी पट्टी से उतरनेवाला है और न गरम पट्टी से उतरनेवाला है। एक ही शब्द से प्रभावित है।

आप सोचिये, काल क्या काम कर रहा है? काल को आप क्यों प्रभावक मान रहे हो? **निष्क्रियाणि च** शुद्ध चार द्रव्य हैं। शुद्ध द्रव्य अशुद्ध द्रव्य के काम आ सकता है। लेकिन काल प्रभावक नहीं हो सकता है। आप लिख लो, प्रवचन में ऐसा ही बोलना चाहिए। आप लोगों ने, जिन्होंने काल की प्रशंसा की है और उसके गुणगान के माध्यम से विशेष कार्य आगे किया है, समन्तभद्र स्वामी ने किया ही नहीं, कर ही नहीं सकते और उन्होंने यह कहा- **'अबुद्धिपूर्वापेक्षया दैवायत्तं'** और **'बुद्धिपूर्वापेक्षया पुरुषायत्तं'** इति जिनतत्त्वं। उन्होंने कहा जो बुद्धिपूर्वक कार्य होता है वह पुरुषायत्त है और जो कार्य अबुद्धिपूर्वक होता है वह दैवायत्त है।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, पञ्चम काल, षष्ठ काल आदि जो भी आ जाते हैं, ये सारे काल मुख्यतः आप लोग कारण मानते हैं, पर ऐसा है नहीं। जैसे थर्मामीटर पर आरोप आ जाता है। **थर्मामीटर में ज्वर नहीं है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्वर को नापा जा रहा है और 'ज्वर भी है' यह संकेत दे रहा है, फिर भी नियामक नहीं है। गर्मी के दिनों में अलग देगा, सर्दी के दिनों में अलग देगा, मुख में लगायें तो अलग देगा, ललाट में लगायें तो अलग देगा। बगल में लगायें तो अलग देगा। भिन्न-भिन्न नाड़ी यंत्रों के प्रभाव से उस थर्मामीटर पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए नाड़ी यंत्र के ज्ञाता, न तो पहले थर्मामीटर के पास जाते थे और न अभी जा रहे हैं। वे थर्मामीटर को नहीं देखते थे। जिस व्यक्ति को देखना है पहले उस व्यक्ति को दूर से देखते थे, बुद्धि से परखा करते थे, जीभ देख लेते थे। काल के पास जीभ नहीं है, काल के पास नाड़ी नहीं है। काल में जीभ है, काल में नाड़ी अवश्य है। लेकिन काल सो जीभ नहीं, नाड़ी सो जीभ नहीं। फिर बाद में आपकी आँखों में ललाई देख करके, आपके पास यह यन्त्र, नियन्त्रण कैसा है यह देख करके, फिर बाद में कभी-कभी नाड़ी का स्पर्श करते थे। कुछ तो ऐसे होते हैं आयुर्वेदज्ञ। **'आयुर्वेत्ति अनेन इति आयुर्वेदः'** आयु को जान सकता है। आयु भी एक कारण है। यह आपके जीवन का संचालक है। काल संचालक नहीं है।

कई मूर्धन्य लोग कहते हैं और आज तक भी कहते आ रहे हैं कि आयु का अर्थ काल है। गलत बात है। आयु का अर्थ काल नापना है ही नहीं, काल है ही नहीं। आयु में, आयु का अर्थ काल में बँधा हुआ आयु कर्म है। आयु का दूसरा अर्थ प्राण है। प्राण आपके पास दस हैं। अब दस में से सबसे उत्तम तो यह है, बल का ज्ञान आपके पास कितना है?

इस प्रकार वात, पित्त, कफ के माध्यम से, आपकी वचन प्रणाली के माध्यम से, आपकी बुद्धि के माध्यम से और आपकी शारीरिक स्थिति के माध्यम से आपके भविष्य को सामने लाने की क्षमता उनके पास आ जाती है। आपके बिना वे नहीं कर सकेंगे। प्रभावक क्या रहा? उनकी बुद्धि को संकेत काल नहीं दे रहा है, जिसको हम प्रभाव के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। किन्तु अब हमारे ये सारे के सारे कार्यक्रम हो चुके हैं। उनके परिणाम घोषित हो चुके हैं। इसको कहते हैं चिकित्सा। जब से हम महाराज जी (आचार्य ज्ञानसागर जी) के पास आये हैं, तब से इतनी काल की महिमा गायी जा रही है कि मैं सोचता रहा कि संभव है, दक्षिण भारत में इस प्रकार का काल न हो। तो हम यह पूछ रहे हैं कि **'निष्क्रियाणि च'** या तो ऐसा कह दो **'अत्र तु सक्रियाणि च।'** वहाँ पर (दक्षिण भारत में) काल निष्क्रिय हो और यहाँ पर सक्रिय हो। वहाँ पर हुण्डावसर्पिणी काल काम नहीं कर रहा हो, यहाँ पर काम कर रहा हो। यदि कर रहा है तो सब जगह एक सा करना चाहिए तो ही काल प्रभावक हुआ। ये कुछ बातें ऐसी हैं कि काल द्रव्य कहाँ से प्रभावक हो गया? महावीर भगवान् के काल में चार पाँच कुछ महाप्रभावक हुए हैं, जैसे-गोशालक, मस्करी इत्यादि। अब सोचिये, उन्होंने रट लगा दी, उसका प्रभाव आज तक चला आ रहा है कि काल नियामक ही है।

षट्कारकों में काल नहीं

कारण-कार्य की व्यवस्था में कर्त्ता से लेकर अधिकरण तक का स्वरूप समझिए। अब कारण कार्य की व्यवस्था के बारे में सोचिये। प्रत्येक वाक्य जो विद्वानों के मुख से निकलता है, उसमें सभी कारक काम करते रहते हैं। ऐसे वाक्य का निर्माण करो जिसमें सारे-के-सारे कारक आ जायें। पूज्यपाद स्वामी ने 'वीरभक्ति' में कहा है-

धर्मः सर्वससुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय॥

'धर्म' इसको कर्त्ता बना दिया 'कथंभूतः धर्मः? 'सर्वसुखाकरो हितकरो' यह हो गया कर्त्ता कारक। धर्म सब सुखों की खान है और सबका हित करनेवाला है।

'धर्मं बुधाश्चिन्वते'= विद्वान् लोग धर्म का ही आश्रय लेते हैं। यह कर्मकारक हो गया। **'धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं'**= धर्म के द्वारा ही शिवसुख की प्राप्ति होती है। यह करण कारक हो गया।

'धर्माय तस्मै नमः'= इसलिए धर्म को नमस्कार हो। यह सम्प्रदान कारक हो गया। चार कारक आपके सामने रख दिये। इन चारों में काल आया है या नहीं, आप सोचिये। एक-एक कारक आता जा रहा है। विभक्ति बदलती जा रही है। काल कोई काम नहीं कर रहा, बुद्धि काम कर रही है, तो काम हो जायेगा। **'कोऽत्र प्रभावकः?'** **'कालो नास्ति'** काल प्रभावक नहीं है।

अब आगे चलो- **'धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां'**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सुहृद्-हितैषी धर्म एव तस्मादन्यत् न'= धर्म के अलावा अन्य कोई भी हितैषी नहीं है, यह निश्चय कर लीजिए। साधन हो गया अर्थात् अपादान विभक्ति हो गई।

'धर्मस्य मूलं दया'=धर्मस्य मूलं दया, कालो न= धर्म का मूल दया है, काल नहीं, क्या कहा- 'धर्मस्य मूलं दया' धर्म का मूल दया है। कई व्यक्ति हमसे कहते हैं कि महाराज! आपके प्रवचनों में दया के अलावा कुछ बात आती नहीं। बात तो बिल्कुल ठीक है, हम स्वीकार करते हैं, किंतु यह दयारूप धर्म कौन सी आत्मा में रहता है। हमको बता दो, छह द्रव्यों में **'धर्मः सर्वसुखाकरो'** आदि इन विशेषणों के माध्यम से उनके अनुग्रह का कथन किया है। समन्तभद्र महाराज, पूज्यपाद महाराज, कुन्दकुन्द महाराज ये सारे-के-सारे तत्त्व को समझते हैं।

'धर्मस्य मूलं दया' उस दया रूप धर्म के द्वारा शिवसुख की प्राप्ति होनेवाली है। दया को पकड़ो, मूल को पकड़ो, चूल तो अपने आप मिल जायेगा। लटक रहे हैं, उसको पकड़ करके और नीचे जड़ की, मूल की ओर दृष्टिपात नहीं करते हैं।

दया धर्म से यह युग खिसकता चला जा रहा है। महाराज! आप कृपा करो, महाराज कृपा करो। युग बिगड़ता चला जा रहा है। **'कोऽयं कालः अस्माकं सम्मुखे'**=हमे लोगों के सामने यह कौनसा काल आ गया है? **'दयाया अभावात् अयमागतः'** दया के अभाव के कारण यह आ गया है। 'धर्मस्य मूलं दया।'

'धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं।' 'शिविरार्थं?' शिविर जब तक है तब तक के लिए चित्त में धर्म को धारण करूँ? नहीं, **'धर्मेऽहं चित्तं दधे'** मैं चित्त में धर्म को धारण करता हूँ। एक कारक और रह गया।

'हे धर्म! मां पालय' हे धर्म! मेरी रक्षा करो। हे महाराज! हमारा कल्याण कर दो। यह संबोधन कारक है। वस्तुतः षट् कारक होते हैं। आप सुन रहे हैं? चूँकि विशेष द्रव्यों के लिए सुनाया नहीं जाता, संयोजक महोदय के माध्यम से भूमिका बनी है। अच्छे व्यक्ति को आपने रखा है। ऐसे व्यक्ति को पकड़ा, जिन्होंने निष्क्रिय द्रव्य को प्रभावक घोषित कर दिया। उनके मुख से यह कारिका हमने कई बार सुनी है। कब से सुनी है? जब आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज थे, तब से यह कारिका बराबर सुनते आ रहे हैं। यह कारिका उन्हें बहुत पसंद है। समन्तभद्र स्वामी को रखने के लिए इस कारिका का उल्लेख वे अवश्य करते हैं, लेकिन काल को महाप्रभावक के रूप में अवश्य रखते हैं। यह तो बहुत गड़बड़झाला हो गया। यह नहीं होना चाहिए, बिल्कुल कमजोर व्यक्ति को आप भरजोर कर रहे हो। इससे अधिक और क्या हो सकता है!

यहीं बुद्धि की बलिहारी हो जाती है। बुद्धि की ओर नहीं देखेंगे, तब तो हमारा काम होगा ही नहीं। बुद्धि जब भ्रमित हो गई, तो हो गया काम। आगे कुछ भी पुरुषार्थ करो, कुछ होगा ही नहीं, पुरुषार्थ के लिए कितना भी उत्साहित करो, लेकिन वह आ गया काल। उसके न सींग हैं, न पूँछ है।

छह कारकों में काल नहीं आया। सात कारकों में भी नहीं आया। बहुत सूक्ष्म तत्त्व का विवेचन करते समय सम्बोधन नहीं रखा जाता। **'बालबोधाय कथ्यते'** सम्बोधन बालकों को समझाने के लिए रखा जाता है। अध्यात्म का युग है, ऐसे रहस्य उद्घाटित होते जा रहे हैं। उनको पूछा जाय कि ग्रन्थों में कितने कारक रखे हैं, बताओ? ध्यान रखो, वहाँ पर सम्बन्ध को छुड़ाने के लिए कथन किया है, तो वहाँ सम्बन्ध के बारे में कथन ही नहीं है।

छठा जो कारक है वह कारक है ही नहीं। सम्बन्धकारक **'बन्धस्तु द्वयोरस्ति'**= सम्बन्ध का जो अस्तित्व आता है वह दो के बीच में आता है। **'एकस्य बन्धो नास्ति'**= एक का बंध नहीं होता है। दो मिलने के उपरांत बंध हो जाता है, तो **'मुक्तिः नास्ति'**= मुक्ति नहीं होती है। जब तक एकत्व का अनुभव नहीं होगा, तब तक मुक्ति नहीं हो सकेगी।

'श्रुताराधना' (पृष्ठ २-१०) से साभार

क्रमशः .....

अपने नफे के वास्ते मत और का नुकसान कर।
तेरा भी नुकसाँ होयगा इस बात ऊपर ध्यान कर॥

'शेर-ओ-शायरी' (गोयलीय) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीसवीं सदी में जैनों की उपलब्धियाँ

स्व० पं० माणिकचन्द जी कौन्देय

पाचासी वर्ष के वयोवृद्ध (अब स्वर्गीय) कौन्देय जी अपनी जीवनयात्रा का सिंहावलोकन करते हुए उस सदी में जैनियों द्वारा प्राप्त जैन इतिहास की कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की चर्चा करते हैं। कुछ ऐसी गिनी-चुनी घटनाएँ हैं, जिन्होंने जैन इतिहास की दो शताब्दियों को प्रभावित किया है।

इस लेख की विशेषता यह है कि पक्षपातरहित होकर पण्डित जी ने घटनाओं का चयन किया है। संयम-साधना के उन्नायक परपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी (दक्षिण) जिस गरिमा के साथ इस लेख में अवतरित हुए हैं, जैन विद्याओं के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी तथा गुरुवर पं० गोपालदासजी बरैया को भी उसी गरिमा के साथ स्मरण किया गया है।

स्वयं पण्डितजी ने अपने जीवन के पन्द्रह-बीस सर्वश्रेष्ठ वर्ष लगाकर जिस महाग्रन्थ 'श्लोकवार्त्तिकालंकार' के महाभाष्य की रचना की थी, और जो बीसवीं सदी की उत्कृष्ट उपलब्धि के रूप में गिना जाना चाहिये था, उसे पण्डित जी ने जैसी नम्रता के साथ, अल्प शब्दों में उल्लिखित किया है, वह उनकी निरभिमानता और आत्मानुशासन का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

मैं आगरा जिला-अन्तर्गत चावली गाँव का रहने वाला हूँ। उम्र पचासी वर्ष है। अपनी आँखों से देखी हुयी घटनाओं को कह रहा हूँ। गाँवों में उन दिनों जमीदारों व ठाकुरों की चलती थी। जैन लोग दबकर, हारकर रहते थे। मन्दिरों में घण्टा नहीं बजा सकते थे, मेला, रथयात्रा आदि उत्सव नहीं मना सकते थे, सोने-चाँदी के गहने पहनना तो असम्भव था। स्त्रियों का हाथ-पावों में काँसे की छड़ें पहन लेना भी ठाकुरों की आँखों में खटकता था। जैनों की स्त्रियाँ मन्दिर जाते समय सफेद कपड़े भी नहीं पहन सकतीं थी। ठाकुर लोग बनियों को पनपने नहीं देते थे, बनियों से उधार लेकर भी चुकाते न थे। अनेक यातनायें जैनों को सहनी पड़ती थीं। **१८० वर्ष पहिले का युग जैनों के लिये भयावह था।** अनेक रियासतों में तो जैन मन्दिर बनवाना, शिखर निर्माण करना असम्भव था, निषिद्ध था।

न्यायदृष्टि से ब्रिटिश शासन का लक्ष्य इधर गया, ब्रिटिश शासन को यह जैन समाज का शोषण, पीड़न-ताड़न सहन नहीं हुआ। अंग्रेजों के गढ़ शिमला शैल पर विशाल मन्दिर जी, धर्मशालायें बनायी गयीं। भारी प्रतिष्ठाविधान हुआ, सदा न्यायनीति से चलनेवाले जैनों में वैभववृद्धि हुई।

पहली उपलब्धि : हाथरस का पंचकल्याणक मेला

६५ वर्ष पूर्व हाथरस नगर में सेठ सुन्दरलालजी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने का विचार किया। खुर्जा, अलीगढ़, मथुरा के सेठों से परामर्श किया गया। सब की स्वीकृति से कलेक्टर साहब को अर्जी दी गई कि हम लोग मेला कराना चाहते हैं। उधर अजैनों ने मेला निषेध का प्रयत्न किया। कलेक्टर ने झगड़ा हो जाने की आशंकावश मेला की स्वीकृति नहीं दी। जैनों ने यू.पी. के गवर्नर से मिलकर मेला की स्वीकृति प्राप्त कर ली। लाखों जैनों में हर्ष की लहर दौड़ गयी। उधर अजैन जनता भी कलकत्ता जाकर वाइसराय से मिली और झगड़े का भय बतलाकर मेला निषेध का आर्डर प्राप्त कर लिया। पुनः दुःखित जैनों ने इलाहाबाद जाकर गवर्नर से प्रार्थना की कि सरकार, आपके शासन में क्या कोई झगड़ा हो सकता है? आप हमारे संरक्षक हैं। गवर्नर ने आश्वासन दिया तथा तत्काल कलकत्ता बाइसराय से मिलकर कहा कि 'आप मेरे भरोसे पर मेला की आज्ञा दे दीजिये। मैं प्रबन्ध कर लूँगा। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट इतनी निर्बल नहीं है कि कुछ विरोधी व्यक्तियों का प्रबन्ध नहीं कर सके।' वायसराय ने अपनी निषेध आज्ञा को वापस ले लिया और हाथरस में मेला कराने की आज्ञा दे दी। अब तो जैन बन्धु बड़े उत्साह से जुट गये और गवर्नर ने भी भारी उत्साह से मेले का प्रबन्ध किया।

मेले के अवसर पर हजारों पुलिस और सैनिक प्रबन्ध कर रहे थे। शहर में सैकड़ों लालफीतावाले सिपाही और टोपवाले सैनिक दिखायी दे रहे थे। मेला मार्ग पर मकानों पर चार-चार सिपाही खड़े कर दिये गये और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरकार की ओर से यह ऐलान कर दिया गया कि जिसको मेला देखना हो वह प्रसन्नता से देखे, नहीं देखना चाहे तो वह घर के भीतर घुस कर बैठे। यदि एक कंकड़ी भी भीतर मकान से फैंकी गयी तो वह मकान गोलियों से उड़ा दिया जायेगा। अब तो विरोधी लोग सब ठण्डे पड़ गये और बड़े उल्लास से जिनेन्द्र यात्रा निकली। उस समय जैनों में हर्ष का सागर हिलोरें ले रहा था। अन्य मेलों में रथ यात्रा जलूस के प्रथम झन्डियाँ ध्वजायें, घन्टियों की कतारें निकाली जाती हैं, किन्तु हाथरस में सबसे पहिले हथकड़ियों, बेड़ियों से भरी हुयी गाड़ियाँ निकाली गयीं। भय के मारे विघ्नकार बन्धु सब शान्त बने रहे। ब्रिटिश शासन का प्रभाव अनुपम था। पीछे तो खुर्जा, बड़नगर आदि में अनेक पंचकल्याणक मेले हुये तथा निरुपद्रव हुये। सैकड़ों शिखरबन्द जिनमन्दिर बने। जैनों में धन बढ़ा कांस्यभूषण-युग मिटकर रजत-भूषणयुग को पार कर स्वर्ण-भूषण-युग प्राप्त हुआ। वैभव, अधिकारिता, उच्चपदप्राप्ति बढ़े। ये सब ब्रिटिश शासन की ओर से धार्मिक जैनों को ठोस उपलब्धियाँ प्राप्त हुयीं। विश्वविद्यालयों के पठन-पाठन में जैनग्रन्थ नियुक्त हुये। वहाँ जैन पीठ बनीं, जैन अजैन छात्र अध्ययन-अध्यापन करने लगे।

हाथरस के मेले में एक उपसर्ग की घटना स्मरणीय है। जन्मकल्याणक के अवसर पर हाथी बिगड़ गया, मदोन्मत्त हो गया। लाल-लाल आँखें हो गईं, महावत को सूँड में उठाकर फेंक दिया। बन्ध तोड़ दिये, संपूर्ण मेला में हाहाकार मच गया। मेला पर अन्य हथिनियाँ तो थीं, किन्तु भगवान् की सवारी हाथी पर ही होती है, हथिनी पर नहीं।

सहारनपुरवाले लाला उग्रसेन जी रईस अपने डेरे में केवल कुर्ता पहने नंगे सिर खाट पर बैठे थे, किसी जैन ने जाकर खबर की कि लाला जी, जन्मकल्याण के जुलूस का प्रकरण है। लाखों दर्शक उत्सुक खड़े हुये हैं, हाथी बिगड़ गया है, महावत के वश में नहीं है। लाला जी ने आव देखा न ताव, भक्तिवश प्राणों की परवाह न करके हाथी की ओर लपके ओर णमोकार मंत्र पढ़कर भावपूर्ण भाषा में बोले "हे गजराज, आज तुम्हारा जन्म सफल होगा। तुम धन्य हो जो भगवान् जिनेन्द्र-देव का आरोहण तुम्हारे मस्तक पर किया जायेगा। तुम भगवान् को लेकर सुदर्शन मेरु पर जाओगे, तुम निकट भव्य हो, तुम शान्त हो जाओ, अपने को कृत-कृत्य समझो, तुम्हारा संसारभ्रमण अत्यल्प रह गया है।" इन शब्दों को सुनकर हाथी एक दम शान्त, निष्क्रिय खड़ा हो गया और लाला उग्रसेन जी की ओर अपनी सूँड बढ़ा दी। लाला उग्रसेन जी हस्तिकला के अभ्यस्त थे। झट सूँड़ पर चढ़कर हाथी के माथे पर बैठ गये और कहा कि भगवान् को लाओ। लाखों बन्धु जय जयकार करने लगे, धन्य धन्य कहने लगे। सब हर्षित हुए और जन्मकल्याणक का जुलूस सानन्द सम्पन्न हुआ।

दूसरी उपलब्धि : चारित्र-चक्रवर्ती का उदय

साठ वर्ष पूर्व श्री १०८ शान्तिसागर जी आचार्य दक्षिण प्रान्त से उत्तर की ओर पधारे। सौभाग्यवश उन्होंने बम्बई प्रान्त, राजस्थान, मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश में विहार किया। लाखों जैनबन्धुओं ने धर्मश्रवण, आहारदान, शुद्ध भोजन बनाना आदि सदाचारों को अपनाया तथा अनेक भव्यों ने उनसे मुनिदीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया, हजारों श्रावक श्राविकाओं ने व्रत धारण किये। उनके उपदेश से अनेक पाठशालायें, स्वाध्यायशालायें, प्रचलित हुईं। अनेक बैर-विरोध मिटे, अनेक अजैनों में जैनधर्म की प्रभावना फैल गयी। मुनिमार्ग, आहारदान-प्रणाली, मुनि-भक्ति, चालू हो गये, चतुर्थ काल का दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। देहली, पंजाब, राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रदेश में हजारों जैन बन्धु मुनिभक्त बन गये और उनके विहार, धर्मोपदेश, तीर्थयात्रा आदि में सम्मिलित होकर अपने को धन्य मानने लगे। उनकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा आज तक चालू है। आज भी पचास-साठ दिगम्बर-मुद्राधारी नग्न मूर्तियाँ विद्यमान हैं। ये साधु अनेक श्रावकों को कल्याणपथ-प्रदर्शन कर रहे हैं और स्वयं अट्ठाईस मूल गुणों को पाल रहे हैं। पुलाक जाति में मुनियों का आचरण करते हैं। यद्यपि कतिपय मुनियों में कुछ शिथिलाचार आ गया है। ज्ञानी श्रावक और विद्वानों का कर्त्तव्य है कि उन्हें आगम दिखाकर वात्सल्य उपगूहन अंग पालते हुय समझा देवें, वे निःस्पृह साधु आगम की बातों को श्रद्धा-सहित ग्रहणकर लेंगे, फिर भी कदाग्रह वश यदि कोई स्वीकार न करे तो-

सुत्तादो तं सम्मं यर सिज्जत्तं जदा ण सद्दहति।
सो चेव हवई मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी॥

पूर्व युगों में भी द्रव्यलिंगी मुनि होते थे। बन्धुवर, श्रावक-श्राविकाओं में अनेक त्रुटियाँ प्रविष्ट हो रही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलगुणों का पालन, सप्त-व्यसनों का त्याग तथा सम्यग्दर्शन में भी अनेक अतिचार लग रहे हैं। सभी श्रावक दूध के धुले हुये नहीं हैं, किसी व्यक्ति में कुछ दोष भले ही पाये जायें, किन्तु मुनिधर्म और श्रावकधर्म पालना असम्भव नहीं कहा जा सकता।

सैकड़ों वर्षों के पश्चात् कतिपय मुनिजनों के दर्शन होने लगे हैं। व्यबधान पड़ जाने के अनेक कारण हैं। विरहकाल पड़ जाना इतना बुरा नहीं है। मध्यवर्ती तीर्थंकरों के अन्तराल काल पुष्पदंत से लेकर शान्तिनाथ पर्यन्त सात अन्तरों में भी असंख्याते वर्षों का धर्मविच्छेद हो चुका है। तब कोई जिनमन्दिर, जिनचैत्य, तीर्थ-यात्रा, स्वाध्याय, देवपूजा, संयम मुनि श्रावक आदि धर्म, कोई शेष नहीं थे।

अब तो श्री महावीर स्वामी की उपदेशपरम्परा निरन्तराय चालू है तथा मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकायें भी पंचम काल के अन्त तक निरन्तर पाये जायेंगे। अत: सहनशीलता, उदारता, वात्सल्यपूर्वक मुनि मार्ग को स्थायी बनाने में सहयोग देना चाहिये। मुनिमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और रक्षा के साधक, प्रेरक, निर्वाहक, आप हम श्रावकजन ही हैं। सिद्धों के अतिरिक्त छोटी-मोटी त्रुटियाँ सब जीवों में पायी जाती हैं। अहिंसा और ब्रह्मचर्य का परिपूर्ण पालन करना बारहवें, तेरहवें गुणस्थानों में नहीं बताकर अयोगी और सिद्धों में पाया जाता है।

अहिंसा और शील व्रतों की कौन सी त्रुटि है जो तेरहवें और बारहवें गुणस्थान में नहीं पायी जाती है। उस त्रुटि को सर्वज्ञ जानें या आप अपने अनुभव में विचार करें। सर्वथा निर्दोष तो अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी भगवान् हैं। नमस्तेभ्य:।

धर्म बन्धुओ, वर्तमानकालीन इन मुनिवरों में कतिपय मुनि उग्र तपस्वी हैं, घोर तप करने वाले हैं, इन्द्रियविजयी हैं, कल्याणनिग्रही हैं, सिद्धान्तशास्त्रों का अन्त:प्रवेशी स्वाध्याय करते हैं। अच्छे उपदेष्टा हैं। स्वर्गीय श्री कुन्थुसागर जी महाराज ने अनेक ग्रन्थ रचे हैं। देशभूषण जी महाराज ने भी कई रचनायें बनायी हैं। एक मुनि महाराज ने महान् अलंकारपूर्ण महाकाव्य बनाया है।

आर्यिका मातायें भी धवला, गोम्मटसार-त्रिलोकसार की गूढ़ चर्चायें करती हैं। कठिन ग्रन्थ श्लोकवार्तिक का स्वाध्याय करती हैं।

सोलापुर में एक विदुषी आर्यिका माता जो अष्ट-सहस्री अति कठिन ग्रन्थ हैं, उसकी हिन्दी टीका लिख रही हैं। तो वर्तमान साधुओं, साध्वियों में धर्मसाधन समुचित हो रहा है। क्वचित् त्रुटि आने से समुदाय दूषित नहीं हो जाता।

तीसरी लब्धि : पं० गोपालदासजी बरैया

अस्सी वर्ष पूर्व मध्य प्रदेश के मोरेना में पं० गोपालदास जी का उदय हुआ। इनको जैन सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रचार का भारी उत्साह था। जैन समाज में अनेक संस्कृत विद्यालय खुलें और हजारों आचार्य प्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन करें, ऐसी उत्कट भावना लगी हुयी थी। तदनुसार गुरुजी ने मोरेना में भी सिद्धान्त-विद्यालय स्थापित किया और मुझे न्याय पढ़ाने की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया। गुरु जी उतने ही उद्योगशील थे। उन्होंने अजमेर आदि में अनेक शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की ध्वजा फहराई थी और शास्त्रार्थों में गौरवपूर्ण विजय प्राप्त की थी। मोरेना विद्यालय में स्वयं स्थिर सत्र में बैठकर गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पंचाध्यायी आदि ग्रन्थों को पढ़ाया तथा पं० खूबचन्द्र जी, मक्खनलाल जी, वंशीधर जी, देवकीनन्दन जी, उमरावसिंह जी को और मुझे, यों प्रौढ़ छात्रों को जैन सिद्धान्त का घनिष्ठ विद्वान् बना दिया। आज उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में पाँच सौ सिद्धान्तवेदी मनीषी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। गुरु गोपालदास जी की तपस्या द्वारा जैनधर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ और पूज्य समन्तभद्र आचार्य के मतानुसार अज्ञान अन्धकार को मिटाकर जिन शासन महिमा का प्रचार करने की ठोस भावना लोगों में प्रभावित हुई।

चतुर्थ लब्धि : पं० गणेशप्रसादजी वर्णी

बुन्देलखण्ड झाँसी प्रान्त में पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी का जन्म हुआ। ये स्वभाव के सरल थे और पिता क अनुरूप जन्म से ही जैनधर्म में श्रद्धा रखते थे। मथुरा, खुरजा, नवद्वीप, काशी आदि स्थानों पर महाक्लेश सहन कर संस्कृत विद्या का उपार्जन किया साथ ही अपनी संचयवृत्ति को ज्ञानसंचय में बढ़ाया। शैवों के गढ़ काशी में स्याद्वाद महाविद्यालय स्थापित किया। मैंने भी इस विद्यालय में छह वर्ष तक अध्ययन किया है। अन्य भी अनेक विद्वान् धातु, व्याकरण, न्याय, काव्य शास्त्र आदि का अध्ययन कर शास्त्री आचार्य आदि परिक्षायें उत्तीर्ण कर समाज में जैनधर्म का उद्योत तथा प्रचार कर रहे हैं। माननीय वर्णी जी की प्रेरणा से सागर, कटनी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बरुआसागर, जबलपुर, साढूमल आदि अनेक स्थानों पर बीसों विद्यालय खुले। उनमें हजारों छात्रों ने विद्याध्ययन किया और जैनधर्म की प्रभावना करने में जुट गये।

पूज्य वर्णीजी ने महा पवित्र सम्मेदशिखर के निकट ईसरी में उदासीन आश्रम खोलकर मुनियों, योगियों का महान् उपकार किया है। उसी आश्रम में वर्णीजी ने सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया है। वर्णीजी द्वारा जैनधर्म की महती प्रतिष्ठा बढ़ी है।

पंचमी-लब्धि : धवल ग्रन्थों का प्रकाशन

जिन सिद्धान्तग्रन्थों का दर्शन करने के लिये जैन यात्री, जैनबद्री, मूडबिद्री जाया करते थे, इस शताब्दी में सौभाग्य वश गणपति शास्त्री के चातुर्य से वे महादुर्लभ ग्रन्थ यहाँ उत्तर प्रान्त, मध्यप्रदेश में आ गये और उनकी भाषाटीकायें अनेक विद्वानों द्वारा रच ली गयीं तथा मुद्रित भी हो गयीं। सैकड़ों जैनों ने उनका स्वाध्याय भी किया। जो श्रावक उन सिद्धान्तों के अध्ययन के अधिकारी नहीं थे, वे भी हर्षोत्कर्षपूर्वक स्वाध्याय करने में जुट गये। इस प्रकार जिनागम की भारी प्रभावना हुयी।

एक छोटा सा कार्य मेरे द्वारा भी सम्पन्न हुआ। महातार्किक विद्यानन्दस्वामी-रचित श्लोकवार्त्तिक ग्रन्थ का नाम ही सुनते थे, चौदह वर्ष घोर परिश्रम कर मैंने उस ग्रन्थ का डेढ़ लाख श्लोक प्रमाण हिन्दी भाष्य लिख डाला। सौभाग्य से इस तत्त्वार्थ-चिन्तामणि-महाभाष्य का राष्ट्रभाषा में प्रकाशन भी हो गया है। श्री पं० वर्धमान जी शास्त्री सोलापुर के प्रयत्नों से उसके सात सौ, आठ सौ पृष्ठों के छह खण्ड छप चुके हैं। अब केवल सातवाँ खण्ड का छपना शेष है। मुझे स्वयं आश्चर्य है कि यह पर्वत उठाने के समान विशाल कार्य मुझ छोटे से व्यक्ति से कैसे बन पड़ा? श्री पंचपरमेष्ठी और जिनवाणी माता का प्रसाद ही इसका कारण कहना पड़ता है। श्री महावीर स्वामी की जय।

स्फुट उपलब्धियाँ

श्रीमान् बैरिस्टर जुगमन्धर दास जी तथा चम्पतराय जी ने विलायत में जाकर जैनधर्म का प्रचार किया। कतिपय पुस्तकें अंग्रेजी में लिखकर विदेशी विद्वानों को जिनागम के तत्त्वों से अवगत किया। देश-विदेशों में जैन तत्वों का प्रचार होने से जैनधर्म के प्रति देशीय, देशान्तरीय विद्वानों की जिज्ञासा बढ़ी और अनादरभाव मिटा। तीसरे श्री अजित प्रसाद जी वकील लखनऊ भी जैनधर्म-प्रभावना के अनुरागी हुये।

सेठ मूलचन्द्र जी, नेमीचन्द्र जी सोनी अजमेर ने अजमेर में विशाल मन्दिर बनवाया। इसके दर्शन करने के लिये हजारों दर्शक आते हैं। देशान्तर के पर्यटक भी बड़े चाव से अवलोकन करते हैं। इस शतक में सर सेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर बड़े प्रभावशाली मानव हो चुके हैं। उन्होंने अनेक संस्थाएँ खोलकर हजारों छात्रों को उपकृत किया। सेठ माणिकचन्द्र जी पानाचन्द्र जी जे०पी० बम्बई का भी जैनधर्म की प्रभावना का अधिकतर चाव था। इन्होंने तीर्थ क्षेत्र कमेटी की स्थापना करके तीर्थ स्थानों की रक्षा की तथा बम्बई, रतलाम, प्रभृति नगरों में अनेक छात्रावास बनवाये। लाडनूँ में सेठ सुखदेव जी, गजराज जी आदि ने विशाल दर्शनीय जैनमन्दिर बनवाया। हजारों जैन और अजैन बन्धु उस मन्दिर का अवलोकन करते हैं। इससे भी बड़ा जैनमन्दिर सेठ छदामीलाल जी ने फिरोजाबाद में तैयार किया। प्रतिदिन जैनाजैन बन्धु इस प्रेक्षणीय मन्दिर का श्रद्धा सहित अवलोकन करते हैं और जैनधर्मानुयायी श्रेष्ठी का यश गाते हैं।

वर्तमान कालीन जनतंत्र शासन में भी जैनधर्म का प्रभाव बढ़ा है। सर्वत्र निर्विरोध मुनिविहार हो रहा है। विश्वविद्यालयों में जैन ग्रन्थों का अध्यापन, अध्ययन, परीक्षण, निरुपद्रव चालू है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र-वाद का, वर्ण-जाति भेद व्यवहार गौण होकर जैनों को भी राज्य में सैनिक अफसरों, मंत्रियों, जजों आदि ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठा मिल रही है।

तेईस वर्षों से घोर परिश्रम के फलस्वरूप इस वर्ष श्री महावीर जयन्ती दिवस की सार्वजनिक छुट्टी राज्य शासन ने स्वीकृत कर दी है। मेरे स्मृत, विस्मृत अज्ञात अन्य कार्य भी हुये हैं, उनको यहाँ भी अलम् गिन लेना, कुपित नहीं होना, 'नहिं सर्वः सर्ववित्।'

खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीति अभिमान।
रहिमन दाबे न दबें, जानत सकल जहान॥
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमात्मा कहाँ कौन?

पं० नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर

विश्व, जगत् या लोक पर्यायवाची शब्द हैं। अनंत जीव, अनंतानंत पुद्गल, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश और असंख्यात काल इनके समूह को विश्व कहते हैं। यह विश्व स्वत:सिद्ध और अनादि-अनंत है। प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रमेयत्व और प्रदेशत्व ये सामान्य गुण पाये जाते हैं। अत: पदार्थों में परिणामी नित्यत्व स्वभाव से ही विद्यमान है। जैनदर्शन की यह व्यवस्था है, जबकि अन्य दर्शन ईश्वर और उसके जगत्कर्तृत्व की मान्यता के कारण प्राय: सब कुछ ईश्वराधीन मानते हैं। जैनदर्शन के अनुसार चेतना-स्वरूप आत्मा ही परमात्मा है। वही अनंत ज्ञान-दर्शनसुख-वीर्य का निधान है। यह एक नहीं, संख्या से अनंत हैं।

एष ज्ञानधनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभि:।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्ताम्॥१५॥

आ० अमृतचन्द्र का समयसारकलश।

'आत्मा ज्ञायक स्वभाव है। उसकी सिद्धि करनेवालों के द्वारा स्वयं उपास्य और उपासक भाव को प्राप्त होने से दो प्रकार का कहा जानेवाला वह आत्मा अपने स्वरूप में एकत्व को लिये हुए है। अत: उस एकरूपता की उपासना करो।' वह एकरूप शुद्ध परिणामिक भाव है, जिसे कारण परमात्मा कहते हैं। यही परमशुद्धनय दृष्टि से उपादेय या ध्येय है। यह द्रव्य शक्तिरूप से अविनश्वर है। सदा अहेतुक, अनादि-अनंत, ध्रुव है। सर्व पर्यायों में जाने वाला, किसी भी पर्याय रूप न रहनेवाला, त्रैकालिक एक है। सर्व विकल्पों को तोड़कर निर्विकल्प निज पारिणामिक भाव में उपयोग लगाने और उस उपयोग की स्थिरता का मूल है। जीव के औपशमिक, क्षायिक, औदयिक और क्षायोपशमिक ये चार भाव कर्मनिमित्तक हैं। पारिणामिक कर्मनिरपेक्ष है। पारिणामिक में उक्त दृष्टि परमपारिणामिक के सम्बन्ध में है। किन्तु अशुद्ध पारिणामिक के अन्तर्गत इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छवास प्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व एवं अभव्यत्व भाव भी हैं। ये कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम व उदय की अपेक्षा नहीं रखते। 'इसलिए पारिणामिक कहलाते हैं', परन्तु केवल चैतन्यरूप परम या शुद्ध पारिणामिक है। क्षायिक भाव क्षयनिमित्तक होने से अत्यन्त निर्मल होकर भी पर्याय है, जिसके कारण धारण करनेवाले अरहन्त सिद्ध परमात्मा कार्य-परमात्मा कहलाते हैं और जो परम पारिणामिकरूप कारण परमात्मा को ध्येय बनाकर ही उस पद को प्राप्त हुए हैं, वे अरहन्त सिद्ध परमात्मा सादि अनन्त हैं। अनादि-अनन्त तो परम (शुद्ध) पारिणामिकरूप कारण परमात्मा है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। आचार्य अमृतचन्द्र के उक्त १५वें पद का आशय भी यही है।

वस्तु के अभेद एवं अन्तरंग विषय की मुख्यता से या एक वस्तु की दृष्टि से होनेवाला अभिप्राय निश्चयनय है। उसमें शुद्ध, अशुद्ध एवं परमशुद्ध ये तीन भेद हैं। यों एकदेश शुद्ध और अशुद्ध निश्चयनय भी माने जाते हैं। इनमें परमशुद्ध निश्चयनय का विषय परमपारिणामिक-भाव या कारण-परमात्मा है।

णवि उपज्जइ, ण वि मरइ, बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ॥ ६८॥

(परमात्मप्रकाश)

आ० योगीन्द्रदेव के इस उद्धरण के अनुसार "परमार्थ दृष्टि से यह जीव न उत्पन्न होता है और न बंध तथा मोक्ष को करता है।" इस वचन से जिसके बंध और मोक्ष दोनों नहीं हैं, यही भावना मुक्ति का कारण है। अत: इसे ही शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय रूप कहते हैं। यह ध्यानभावना रूप नहीं है, क्योंकि ध्यानभावना पर्याय विनश्वर है, जब कि यह शुद्ध पारिणामिक रूप होने से अविनश्वर है। जो दर्शन ईश्वर को जगत्कर्त्ता एवं सर्वव्यापक मानकर उसे आराध्य बनाकर ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति बताते हैं, उसके स्थान में जैन दृष्टि प्रत्येक आत्मा में स्वभाव से विद्यमान उक्त निज कारण-परमात्मा को मानती है। प्राथमिक अवस्था में पूजा और स्वाध्याय द्वारा प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह निम्नलिखित दृष्टि को भलीभाँति समझे-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

(आचार्य कुन्दकुन्द का प्रवचनसार, ८०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो अरहंत को द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्व से जानता है, वह निज आत्मा को जानता है और उसका मोह (दर्शनमोह या मिथ्यात्व) नष्ट होता है। अरहंत (कार्यपरमात्मा) पद प्राप्त करने के लिए उनके द्रव्य-गुण-पर्याय की हमसे समानता है यह जानकर उनका ध्यान करते हुए अपने भीतर के रागादि विकारों को दूर करना और उन परमात्मा के अवलम्बन रूप शुभोपयोग से आगे अभेदगुणत्व रूप परमपारिणामिक भाव के ध्यान से परमात्मत्वरूप अपनी पर्याय प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य है।

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥

(आ० पूज्यपाद)

'जो परमात्मा है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वह परमात्मा है, इसलिए मेरे द्वारा मैं ही उपास्य हूँ अन्य कोई नहीं'। यह स्वभावभक्ति उक्त अरहन्त-सिद्धदेवभक्ति के पश्चात् का कर्त्तव्य है। कथन में एक ही आत्मा का प्रारम्भ में ध्येय-ध्यातारूप भेद कथंचित् भेददृष्टि से माना जाता है, जो अनेकान्त का माहात्म्य प्रकट करता है।

परमशुद्ध निश्चयनय का विषय त्रिकाली ध्रुवत्व पारस के समान है, जिसके स्पर्श (आश्रय) से पर्याय में पवित्रता आती है। इसी चैतन्य स्वभाव की प्रतीति को निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। यर्थाथ स्वरूप में निजगुणपर्याय में तन्मय आत्म-तत्त्व के ज्ञान को निश्चय सम्यग्ज्ञान कहते हैं और संकल्प-विकल्प रहित होकर आत्मस्वरूप.में स्थिर होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। अपने ज्ञानानंद स्वभाव स्वरूप से अनभिज्ञ रहने से पर्याय में एकत्व बुद्धि रखकर यह जीव संसार में जन्म मरण के दुःख उठा रहा है। यह शुद्ध पारिणामिक भाव आत्मानुभूति में प्रकट होता है। समीचीन दृष्टि और स्वकल्याण के लिए आ० पद्मनन्दि का यह पद्य उल्लेखनीय है-

ज्ञानज्योतिरुदैति मोहतमसो भेदः समुत्पद्यते,
सानन्दा कृत्कृत्यता च सहसा स्वान्ते समुन्मीलति।
यद्येकस्मृतिमात्रतोऽपि भगवानत्रैव देहान्तरे,
देवस्तिष्ठति मृग्यतां स रभसादन्यत्र किं धावति॥

अर्थात्- 'दर्शनमोह का नाश होने पर जब ज्ञानज्योति प्रगट होती है, तब हृदय में सानन्द कृतकृत्यता का भाव उत्पन्न होता है। अपने देह के भीतर ही परमात्मा विद्यमान है, वहीं उसे ढूँढ़ना चाहिए, बाहर दौड़ना व्यर्थ है।

'मम स्वरूप है सिद्ध समान' इत्यादि अनेक लोक प्रसिद्ध उदाहरण हम जानते हुए भी उनके रहस्य को नहीं समझते, क्योंकि कबीर की यह वाणी- 'इस द्वारे का देहरा तामे पिउ पहचान' यह कथन अन्यदर्शन के अनुसार सर्वव्यापक ईश्वर का संकेत करता है। जबकि 'मम स्वरूप है सिद्ध समान' यह वाक्य शुद्धद्रव्यार्थिक या परमशुद्ध निश्चयनय से कारणपरमात्मा की ओर संकेत करता है। जैनागमकथित यह आध्यात्मिक दृष्टि ही कल्याणकारिणी है।

'वात्सल्यरत्नाकर' से साभार

पं० मनीष जैन की नियुक्ति

पं० मनीष जैन, सागर (म०प्र०) को सर्वोदय जैन विद्यापीठ में सह-व्यवस्थापक (प्रचार विभाग) नियुक्त किया गया है। यदि वे आपके नगर या ग्राम में आयें तो कृपया नवीन सदस्यता ग्रहण करने का कष्ट करें। उनका मोबाइल नं० ९३००७३०४२७ है।

गालियों का दान

कुछ उद्दण्ड जब बुद्ध को गालियाँ दे चुके, तो बुद्ध हँसते हुए बोले- ''भद्र! यह तो बताओ, यदि कोई दाता दान करे और भिक्षु न ले, तो वह वस्तु किसके पास रहेगी?''

''दाता के पास।''

''ऐसी बात है, तो जो गालियाँ तुम मुझे दे रहे हो, मैं नहीं लेना चाहता।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अंश

तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन

पं० महेशकुमार जैन व्याख्याता

द्वितीय अध्याय

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः॥ २/२८॥

सर्वार्थसिद्धि– 'च' शब्दः समुच्चयार्थः। विग्रहवती चाविग्रहा चेति।

अर्थ- 'च' शब्द समुच्चय के लिए है। जिससे विग्रहवाली और विग्रहरहित दोनों गतियों का समुच्चय होता है।

राजवार्तिक– 'च' शब्दः समुच्चयार्थः। विग्रहवती च अविग्रहा चेति समुच्चयार्थः 'च' शब्दः। उपपाद-क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा, कुटिला विग्रहवती। (२/२८/२)

अर्थ– 'च' शब्द समुच्चय के लिए है। विग्रहवाली और विग्रहरहित दोनों के समुच्चय के लिए 'च' शब्द दिया है। अर्थात् उपपाद क्षेत्र के लिए जो ऋजु गति होती है वह विग्रहरहित है और जो मोड़वाली गति है वह विग्रहसहित है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दादविग्रहा चेति समुच्चयः तेन संसारिणो जीवस्य नाविग्रहागतेरपवादो विग्रहवत्या-विधानादिति संप्रत्ययः॥

अर्थ- 'च' शब्द से अविग्रह गति का समुच्चय हो जाता है, जिससे संसारी जीव की विग्रहवाली गति का विधान कर देने से अविग्रह गति का अपवाद नहीं होता, अर्थात् संसारी जीव की अविग्रह गति का समीचीन विश्वास करना चाहिये।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दादविग्रहा लभ्यते।

अर्थ- 'च' शब्द से अविग्रह अर्थात् मोड़रहित भी गति होती है, यह ग्रहण करना चाहिये।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारादवक्रा च।

अर्थ- 'च' शब्द से अवक्र अर्थात् ऋजुगति भी होती है।

भावार्थ- संसारी जीव की गति मोड़सहित भी होती है एवं मोड़रहित भी होती है। दोनों के समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया है।

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः॥ २/३२॥

सवार्थसिद्धि-'च' शब्द समुच्चयार्थः मिश्राश्च योनयो भवन्तीति। इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात्।

अर्थ- 'च' शब्द समुच्चयवाची है, जिससे योनियाँ मिश्र भी होती हैं, इसका समुच्चय हो जाता है। यदि 'च' पद का यह अर्थ न लिया जाये, तो मिश्र पद पूर्वोक्त का ही विशेषण हो जाता है।

राजवार्तिक- 'च'-शब्दः प्रत्येकसमुच्चयार्थः। मिश्राश्चेति 'च' शब्दः क्रियते प्रत्येकसमुच्चयार्थः। इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात्, तेन सचित्तशीतसंवृता सेतरा यदा मिश्रास्तदा योनयो भवन्तीत्ययमर्थो लभ्यते। 'च' शब्दे पुनः सचित्तादयः प्रत्येकं च योनयो भवन्ति मिश्राश्चेत्ययमर्थो लब्धः....। (२/३२/६) तद्भेदाश्चशब्दसमुच्चिताः प्रत्यक्ष-ज्ञानि-दृष्टा इतरेषामागमगम्याश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्याः॥ २/३२/२७॥ तेषां नवानां योनीनां भेदाः कर्मभेदजनित-विविक्तवृत्तयः प्रत्यक्षज्ञानिभिर्दिव्येन चक्षुषा दृष्टा इतरेषां छद्मस्थानामागमेन श्रुताख्येन गम्याश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आख्यायन्ते। (२/३२/२७)... उक्तं च-

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुएसु सदसहस्सा॥

बा.अ. ३५॥

अर्थ– 'च' शब्द प्रत्येक के समुच्चय के लिए है। 'मिश्राश्चेति' इसमें 'च' शब्द प्रत्येक के समुच्चयार्थ ग्रहण किया है। यदि 'च' शब्द का ग्रहण नहीं होता, तो पूर्वोक्त सचित्तादि का विशेषण हो जाता। उससे यह शब्दार्थ निकलता है कि सचित, शीत, संवृत जब अचित्त, उष्ण और विवृत से मिश्र हों तब योनियाँ होंगी। 'च' शब्द का प्रयोग कर लेने पर पुनः सचित्त आदि प्रत्येक योनियाँ है तथा मिश्र भी योनियाँ है ऐसा स्पष्ट अर्थ उपलब्ध होता है। ..... 'च' शब्द से समुच्चित प्रत्यक्षज्ञानियों के द्वारा दृष्ट और अल्पज्ञानियों के आगमगम्य चौरासी लाख संख्या वाले उनके भेद हैं। कर्मभेदजनित विविक्त वृत्तिवाले उन नव योनियों के भेद प्रत्यक्षज्ञानियों के दिव्यचक्षुओं के द्वारा दृष्ट हैं। तथा इतर छद्मस्थों के श्रुत नामक आगमगम्य चौरासी लाख कहे गये हैं।..... कहा भी है-

नित्यनिगोद, अनित्यनिगोद, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय इनमें प्रत्येक की ७-७ लाख, वनस्पति की १० लाख, विकलेन्द्रिय की ६ लाख, देव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारकी एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच की ४-४ लाख और मनुष्यों की १४ लाख योनियाँ है।

श्लोकवार्तिक-'च' शब्दः प्रत्येकं समुच्चयार्थ इत्येके, तमंतरेणापि तत्प्रतीतेः पृथिव्यप्तेजोवायुरिति यथा। इतरयोनिभेदसमुच्चयार्थस्तु युक्तश्च शब्दः।

अर्थ- 'च' शब्द प्रत्येक के समुच्चय के लिए है, ऐसा कोई कहता है, परन्तु उसके बिना भी प्रत्येक का समुच्चय हो जाता है जैसे- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि। इतरयोनि के भेद का समुच्चय करने के लिए सूत्र में 'च' शब्द आया है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति-'च' शब्द एकैकसमुच्चयार्थः।

अर्थ- 'च' शब्द एक-एक के समुच्चय के लिए है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकार उक्तसमुच्चयार्थः। तेनायमर्थो लभ्यते- सचित्ताश्च मिश्रा भवन्ति, अचित्ताश्च मिश्रा भवन्ति। शीताश्च मिश्रा भवन्त, उष्णाश्च मिश्रा भवन्ति। संवृताश्च मिश्रा भवन्त, विवृताश्च मिश्रा भवन्ति, मिश्रा अप्यन्यैः सह मिश्रा भवन्ति।

अर्थ- 'च' शब्द योनियों के समुच्चय के लिए है जिससे यह अर्थ होता है कि सचित भी मिश्र होती हैं, अचित्त भी मिश्र होती हैं, शीत भी मिश्र होती हैं, उष्ण भी मिश्र होती हैं, संवृत भी मिश्र होती हैं, विवृत भी मिश्र होती हैं। मिश्र योनियाँ भी अन्य के साथ मिश्र होती हैं।

भावार्थ- सूत्र में 'च' शब्द एक-एक के समुच्चय के लिए है, जिससे योनियों के नव भेद सिद्ध हो जाते हैं। यथा- सचित्त योनि, अचित्त योनि, सचित्ताचित्त योनि, शीत योनि, उष्ण योनि, शीतोष्ण योनि, संवृत योनि, विवृत योनि, और संवृतविवृत योनि। 'च' शब्द से योनियों के ८४ लाख भेद भी होते हैं जैसे राजवार्तिक आदि में कहे हैं, यह भी समझना चाहिये।

अनादिसंबन्धे च ॥ २/४१॥

सर्वार्थसिद्धि-'च' शब्दो विकल्पार्थः। अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति। कार्यकारणभावसंतत्या अनादिसंबन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धे च बीजवृक्षवत्।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द विकल्प को सूचित करने के लिए दिया है, जिससे यह अर्थ हुआ कि तैजस और कार्मण शरीर का अनादि सम्बन्ध है और सादि सम्बन्ध भी है। कार्य-कारण भाव की परम्परा की अपेक्षा अनादि सम्बन्धवाले हैं और विशेष की अपेक्षा सादिसम्बन्ध वाले हैं। यथा- बीज और वृक्ष।

राजवार्तिक- 'च' शब्दो विकल्पार्थः। 'च' शब्दो विकल्पार्थो वेदितव्य, अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति॥ २/४१/१॥

अर्थ- 'च' शब्द विकल्पार्थक है। 'च' शब्द विकल्प के लिए जानना चाहिये, जिससे यह अर्थ है कि तैजस और कार्मण शरीर का, जीव के साथ अनादिसम्बन्ध है और सादिसम्बन्ध भी है।

श्लोकवार्तिक-'च' शब्दात् सादिसम्बन्धे ते प्रतिपत्तव्ये।

अर्थ- तैजस और कार्मण शरीर का आत्मा के साथ सादिसम्बन्ध भी है, इसका ज्ञान कराने के लिए 'च' शब्द दिया गया है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति-'च' शब्दोऽत्र पक्षान्तरसूचनार्थः। कार्य-कारणसन्तत्यपेक्षयाऽनादि-सम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धे च ते जीवस्य बीजवृक्षवदिति तात्पर्यार्थः।

अर्थ- 'च' शब्द पक्षान्तर की सूचना करता है कार्य-कारण के प्रभाव की अपेक्षा तो इन दोनों शरीरों का जीव के साथ अनादि से सम्बन्ध है और अमुक-अमुक समय पर बँधने की अपेक्षा सादिसम्बन्ध है। जैसे- बीज और वृक्ष का प्रवाहरूप सम्बन्ध तो अनादि से है और अमुक वृक्ष उस बीज से पैदा हुआ, इत्यादि की अपेक्षा बीज-वृक्ष का सादिसम्बन्ध है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारात् पूर्वपूर्वतैजसकार्मण्योः शरीरयोर्विनाशादुत्तरोत्तरयोस्तैजसकार्मण्योः शरीरयोरुत्पादाच्च वृक्षाद् बीजवत् बीजात् वृक्षवच्च कार्य-कारणसद्भावः। सन्तत्या अनादि-सम्बन्धे विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धे चेत्यर्थः।

अर्थ- चकार से सादिसम्बन्ध भी है अर्थात् पूर्व-पूर्व के तैजस और कार्मण शरीर के विनाश से आगे-आगे के तैजस और कार्मण शरीर की उत्पत्ति होती है। जैसे वृक्ष से बीज के समान और बीज से वृक्ष के समान कार्य-कारण का सद्भाव होने से सन्तति की अपेक्षा से अनादिसम्बन्ध है और विशेषापेक्षा से सादि सम्बन्ध है। यह इसका अर्थ हुआ।

भावार्थ- तैजस और कार्मण शरीर का संसारी जीवों के साथ अनादिसम्बन्ध है एवं 'च' शब्द से सादिसम्बन्ध भी है। कार्य-कारण भाव की अपेक्षा अनादिसम्बन्ध है तथा विशेष की अपेक्षा सादिसम्बन्ध है। जैसे बीज-वृक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की परम्परा तो अनादि है, परन्तु किसी वृक्ष या बीज की अपेक्षा वह सादि है।

लब्धिप्रत्ययं च ॥ २/४७॥

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द आया है, उससे वैक्रियिक शरीर का सम्बन्ध करना चाहिये।

राजवार्तिक- वैक्रियिकमित्यभिसम्बध्यते। (२/४७)

अर्थ- वैक्रियिक शब्द को पिछले सूत्र से जोड़ लेना चाहिये।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दस्तूक्तसमुच्चयार्थस्तेन लब्धिप्रत्ययमौपपादिकं च वैक्रियिकमिति संप्रत्ययः।

अर्थ- 'च' शब्द उक्त के समुच्चय के लिए है, जिससे यह अर्थ हुआ कि वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से होता है और लब्धिप्रत्यय भी होता है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दो वैक्रियिकाभिसम्बन्धार्थः।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द वैक्रियिक के सम्बन्ध के लिए आया है।

तत्त्वार्थवृत्ति- न केवलमौपपादिकं शरीरं वैक्रियिकं भवति, किन्तु लब्धिप्रत्ययं लब्धिकारणोत्पन्नं शरीरं वैक्रियिकं कस्यचित् षष्ठगुणस्थानवर्तिनो मुनेर्भवतीति वेदितव्यम्।

अर्थ- केवल उपपाद जन्म से वैक्रियिक शरीर नहीं होता, किन्तु लब्धि के निमित्त से भी कदाचित् छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के भी वैक्रियिक शरीर होता है।

भावार्थ- 'च' शब्द से वैक्रियिक शरीर लब्धिप्रत्यय भी होता है ऐसा समझना चाहिये।

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव॥ २/४९॥

सर्वार्थसिद्धि- तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थः 'च' शब्दः क्रियते। तद्यथा-कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं कदाचित् सूक्ष्मपदार्थनिर्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च॥

अर्थ- आहारकशरीर के प्रयोजन का समुच्चय करने के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया है। यथा- आहारक शरीर कदाचित् लब्धिविशेष के सद्भाव को जताने के लिए, कदाचित् सूक्ष्म पदार्थ का निश्चय करने के लिए और संयम की रक्षा के लिए उत्पन्न होता है।

राजवार्तिक- 'च' शब्दस्तत् प्रयोजनसमुच्चयार्थः। तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थश्चशब्दः क्रियते। तद्यथा कदाचिल्लब्धि-विशेषसद्भावज्ञापार्थं कदाचित् सूक्ष्मपदार्थनिर्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च भरतैरावतेषु केवलिविरहे जात-संशयस्तन्निर्णयार्थं महाविदेहेषु केवलिसकाशं जिगमिषुरौदारिकेण मे महानसंयमो भवतीति विद्वानाहारकं निर्वर्तयति। (२/४९/४)

अर्थ- 'च' शब्द उसके प्रयोजन का समुच्चय करने के लिए है। आहारक शरीर के प्रयोजन का समुच्चय करने के लिए 'च' शब्द कहा गया है। तद्यथा-कदाचित् लब्धिविशेष के सद्भाव का ज्ञान कराने के लिए, कदाचित् सूक्ष्म पदार्थ का निर्धारण करने के लिए और संयम का परिपालन करने के लिए आहारक शरीर निकलता है। भरत और ऐरावत क्षेत्र में केवलियों का अभाव होने पर महाविदेहक्षेत्र में केवलिभगवान् के पास औदारिक शरीर से जाना तो शक्य नहीं है और असंयम भी बहुत है, अतः संशय का निर्णय करने के लिए प्रमत्तसंयत मुनि आहारक शरीर की संरचना करते हैं।

श्लोकवार्तिक- शुभं मनःप्रीतिकरं विशुद्धं संक्लेशरहितमव्याघाति सर्वत्र व्याघातरहितं च शब्दादुक्तविशेषणसमुच्चयम्।

अर्थ- आहारकशरीर मन को प्रीतिकर होने से शुभ है, संक्लेशरहित होने से विशुद्ध है, बाधारहित होने से अव्याघाती है और 'च' शब्द उपर्युक्त विशेषणों का समुच्चय करने के लिए है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दस्तन्निवृत्तिप्रयोजनविशेषसमुच्चयार्थः। स च स्वस्यर्द्धिविशेषसद्भावज्ञानं सूक्ष्मपदार्थनिर्धारणं संयमपरिपालनं च प्रयोजनविशेषः कथ्यते। तदर्थमाहियते निर्वर्त्यत इत्याहारकम्।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द आहारक शरीर की निर्वृत्ति-रचना तथा प्रयोजनविशेष का ग्रहण करने के लिए है। अपनी ऋद्धिविशेष का सद्भाव ज्ञात करने के लिए, सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिए और संयम के परिपालन के लिए यह शरीर बनता है, यह इसका प्रयोजन है। उपर्युक्त प्रयोजन के लिए जो रचा जाता है वह आहारक है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकार उक्तसमुच्चयार्थः। तेनायमर्थः- कदाचित् संयमपरिपालनार्थम्, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थनिर्णयार्थम्, कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थमाहारकं शरीरं भवति।

अर्थ- 'च' शब्द उक्त के समुच्चय के लिए है। इसका यह अर्थ है कि कदाचित् संयम के परिपालन के लिए, कदाचित् सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय करने के लिए, कदाचित् लब्धिविशेष के सद्भाव का ज्ञान कराने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए आहारक शरीर होता है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी- सूत्र में आये 'च' शब्द से आहारक शरीर भी लब्धिप्रत्यय होता है, यह जानना चाहिये।

भावार्थ- आहारक शरीर शुभ है, विशुद्ध है, निर्बाध है। सूत्र में 'च' शब्द आहारक शरीर के प्रयोजन की सिद्धि के लिए कहा है। यथा- लब्धिविशेष के सद्भाव का ज्ञान कराने के लिए, सूक्ष्म पदार्थ का निश्चय कराने के लिए, संयम की रक्षा आदि के लिए प्रमत्तसंयम मुनि आहारकशरीर की रचना करते हैं। एवं यह लब्धिप्रत्यय होता है, यह भी 'च' शब्द से ग्रहण करना चाहिए।

श्री दि० जैन संस्कृति संस्थान, सांगानेर

आस्थाओं को नकारती ये मोबाइल घंटियाँ

डॉ० ज्योति जैन

पिछले दिनों विद्यार्थियों के एक कार्यक्रम के लिये सूचना देने को उनके द्वारा दिये गये नम्बरों का उपयोग किया, तो दंग रह गयी, तरह-तरह की रिंगटोन सुनकर। पहला ही नम्बर डायल करने पर सांवरिया...सांवरिया... जब तक मोबाइल उठा नहीं मजबूरीवश गाना सुनना ही पड़ा। ये तो मात्र एक उदाहरण है। ऐसे ही न जाने कितने कानफोड़ू, भद्दे गीतों, तरह-तरह की आवाजों, खिलखिलाने, रोने या फूहड़ संगीत धुनों से आप हम सबको रूबरु होना पड़ता है। इन रिंगटोनों को सुनवानेवाले यह भूल जाते हैं कि फोन की रिंगटोन बडे-बुजुर्ग, महिला-बच्चे आदि सभी सुनते हैं।

पहले हर फोन पर एक ही तरह की घंटी बजती थी। फिर लोकल/बाहर की घंटी आयी। एक आदत सी बन गयी थी। मोबाइल युग की शुरुआत होने पर घंटी के समान ही आठ दस तरह की रिंगटोन सुनाई देती थी। पर आज आलम यह है कि आप रिंग करते समय क्या रिंगटोन सुन लें कुछ पता नहीं। मोबाइल के इस युग में सड़क के दोनों ओर लगे बड़े-बड़े मोबाइल विज्ञापन होर्डिंग्स ने दिल दिमाग पर कब्जा कर लिया है। मोबाइल उपभोक्ताओं की रिकार्डतोड़ संख्या आये दिन अखबारों की सुर्खियाँ बनती है। फुटपाथियों से लेकर मंत्रियों तक, मजदूर से लेकर मैंनेजर तक, बच्चे, युवा, महिला, बुजुर्ग सभी के हाथ/जेब पर्स में एक आवश्यक उपकरण के रूप में मोबाइल ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है।

बात चल रही थी रिंगटोन की। बाजारवाद के शिकंजे में जकड़ी कम्पनियों और उनके अधिकारियों का एकमात्र उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है। वह अपनी सारी बुद्धि इसी में झोंकते हैं। जिससे ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाया जाये। ऐसे में संस्कृति, साहित्य, कला, संगीत, गीत आदि सभी को बिकाउ माल बनाकर बेचा जा रहा है। सम्मान, आस्था, श्रद्धा जैसे शब्द बेमानी हो गये हैं।

णमोकारमंत्र हो या गायत्री मंत्र, अन्य धार्मिक भजनों, पदों, धुनों का मोबाइल रिंगटोन में बहुतायत से प्रयोग हो रहा है। धर्म व्यक्तिगत आस्था की अनुभूति है न कि प्रदर्शन की। हम भर तो लेते हैं, पर दूसरा जब उसे सुनता है, उसका अनुभव? फिर पन्द्रह बीस सेकण्ड में पूरा होने से पहले ही उसे उठा लेने पर क्या मंत्र/पद गायक संगीतकार का अपमान नहीं है। पर फैशन व दिखावे में आज हम जाने अनजाने अपनी धार्मिक आस्थाओं संस्कृति/संगीत/कविता सहित अपनी संवेदनाओं का मूल्य घटाते जा रहे हैं।

आज जब चारों ओर का वातावरण मोबाइलयुक्त होता जा रहा है, तब आस्था के केन्द्र मंदिरों में बाहर लिखना पड़ रहा है कि मंदिर जी में मोबाइल स्विच ऑफ कर प्रवेश करें। एक विडम्बना यह भी आ रही है कि कुछ साधुओं में पिच्छी, कमण्डलु, शास्त्र के साथ मोबाइल भी एक आवश्यक उपकरण बनता जा रहा है। हमारे वीतरागी धर्म को रागरूपी नये-नये आवरणों का जामा पहनाया जा रहा है। स्थानीय स्तर पर कुछ दिन चर्चा होती है, फिर सब सामान्य हो जाता है।

मोबाइल से होनेवाले खतरे, उनसे निकलने वाली रेज़ आदि सभी के बारे में समय-समय पर विशेषज्ञ सचेत करते रहे हैं। सच भी है यदि मर्यादा में रहकर किसी वस्तु का उपयोग करो, तभी लाभकारी है, अन्यथा दुष्परिणाम तो भुगतने ही पडेंगे।

चिंतन अवश्य करना है किस तरह हम अपनी धार्मिक/सांस्कृतिक आस्थाओं को बनाये रखें, क्योंकि तभी धर्म, संस्कृति सुरक्षित रहती है।

सर्वोदय, जैन मण्डी, खतौली-२५१ २०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरो! आओ! अपने सिद्धक्षेत्र बचायें! कैसे? सुझाव एवं एक अपील

प्राचार्य डॉ० नेमिचन्द्र जैन

जैन संस्कृति का मूलाधार वीतरागता है। जैन तीर्थंकरों ने वीतरागता के मार्ग पर चलकर ही मुक्ति प्राप्त की थी। जिस स्थान से मुक्ति पायी जाती है, उस क्षेत्रविशेष को सिद्धक्षेत्र कहा जाता है।

हमारे सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र सत् पुरुषार्थ के प्रेरक हैं। आज हम देख रहे हैं कि हमारे शाश्वत तीर्थ क्षेत्र शिखर जी पर अनधिकृत अधिकार करने का प्रयास चल रहा है। हमारे ही धर्मबन्धु श्वेताम्बर भाई हम दिगम्बरों को अपने अधिकार से वंचित करना चाहते हैं। पिछले १०० वर्षो से मुकदमेबाजी में फँसाये हुए हैं। करोड़ों रुपया बर्बाद हो रहा है। तीर्थक्षेत्र कमेटियाँ कार्य करती हैं। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी भी है, जो निरन्तर तीर्थक्षेत्रों के रक्षार्थ प्रयत्नशील है। पर अर्थ के अभाव में, हम सभी के व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण, पद और प्रतिष्ठा की दौड़ के कारण, पूर्णत: सफल नहीं हो पा रहीं हैं। हम सभी देख रहे हैं कि २२ वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ जी एवं हजारों पवित्रात्माओं की सिद्ध-भूमि गिरनार जी पर हमारे देश के ही धन-लोभी, आतंकी लोगों ने डण्डे के बल पर अधिकार जमाने का कार्य कर रखा है। सिद्धक्षेत्र गिरनारजी की तीसरी एवं पाँचवीं टोंक पर हम पूजन-वंदन से वंचित होते जा रहे हैं। ओर ऐसा भी मान लें कि गिरनार जी हमारे हाथों से खिसकता जा रहा है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यह सब दिगम्बर और श्वेताम्बर की फूट का ही परिणाम है। अगर श्वेताम्बर भाइयों का सहयोग रहता, तो हमारे गिरनार जी क्षेत्र की पाँचवीं टोंक पर दत्तात्रेय की मूर्ति स्थापित न हो पाती। तीसरी टोंक पर गोरखनाथ जी की मूर्ति भी विराजमान न हो पाती। यदि हम यह मानकर चलें कि हमारे श्वेताम्बर जैन भाइयों के इशारे पर यह सब हो गया, तो असत्य नहीं हैं। हम जानते हैं कि जैसे दो बिल्लियों की लड़ाई में बन्दर मौज मारता है, उसी प्रकार श्वेताम्बर जैन और दिगम्बरों जैन की फूट और लड़ाई के कारण ही अजैन बन्धु लाभ उठा रहे हैं। हमारे क्षेत्रों का अपहरण करते जा रहे हैं। केशरिया जी का प्रकरण भी ऐसा ही हैं। श्री सिद्धक्षेत्र पावागिरजी का जलमंदिर-प्रकरण, मक्सी जी का पार्श्वनाथ मंदिर आदि भी कालान्तर में अपहरण के शिकार न हो जावें, विचारणीय है।

शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखरजी पर भी ऐसी ही सोचनीय स्थिति है। अभी पिछले वर्षो में राँची उच्च न्यायालय ने दिगम्बरों को समानरूप से क्षेत्रवन्दना, पूजन करने का अधिकार दिया था। हमारे श्वेताम्बर भाई इसे पचा नहीं सके। पहिले श्री कल्याणजी आनन्दजी ट्रस्ट, जो कि श्वेताम्बरों का ही ट्रस्ट है एवं दिगम्बरों के बीच का झगड़ा था। अब कलकत्ता के श्वेताम्बर जैन भाइयों ने उच्चतम न्यायालय में प्रकरण कर रखा है। उनका कहना है कि सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखर पर न कल्याण जी आनन्दजी ट्रस्ट का और न दिगम्बरों का अधिकार है, बल्कि श्वेताम्बरों का ही अधिकार है, जिसका निर्णय होना शेष है। इस प्रकार श्वेताम्बर भाई अपने धन के बल से दिगम्बरों को परेशान करने में लगे हैं।

दिगम्बर जैन समाज धन के मामलों में अधिकांशत: मन वचन काय से पूर्णत: दिगम्बर न होते हुए भी दिगम्बर ही है। अब विचारणीय है कि हमारे पूज्य शाश्वत सिद्ध क्षेत्रों और हमारे अधिकारों की रक्षा कैसे हो? सभी जानते हैं कि बूँद बूँद से घड़ा भरा जा सकता है। कुछ वर्षों पूर्व परम पूज्य १०८ आर्यनन्दी मुनिराज ने मुनि अवस्था में ही दिगम्बर जैन समाज से एक करोड़ रुपया की राशि एकत्रित करवा कर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को प्रदान करवायी थी। जब एक दिगम्बर जैन मुनि सिद्धक्षेत्र के रक्षार्थ अपने त्याग एवं तपस्य को भी सदोष बनाकर महान् कार्यकर प्रायश्चित के द्वारा शोधन कर लेता है, तब हम सब तो गृहस्थ हैं। गजरथ चलवाते हैं। नये-नये अतिशय क्षेत्र बनवा रहे हैं, और अरबों का खर्च करते हैं। नये अतिशय क्षेत्र अतिशययुक्त न होने पर भी अतिशययुक्त हो जाते हैं, क्योंकि उनके निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अपना धन लगाया है, पर ध्यान रखें, नये क्षेत्र कितने ही बनायें, यदि अनादि से सिद्धक्षेत्र रहा हमारा सम्मेद-शिखर हमारे हाथ से चला गया, तो हमारी ऐतिहासिक प्राचीनता चली गई समझिये। अत: समाज से निवेदन है कि सोच में परिवर्तन कर सिद्धक्षेत्र के रक्षार्थ सन्नद्ध हो जावें। मेरा सुझाव है कि १. समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रतिदिन के खर्च में कमी कर मात्र एक प्रतिशत राशि सम्मेद शिखर की रक्षार्थ गुल्लक में इकट्ठा कर देने की प्रतिज्ञा करे। २. दिगम्बर जैन मंदिरों की कमेटियाँ प्रतिवर्ष की आय से मात्र दो प्रतिशत राशि देने का संकल्प करे। ३. सिद्धक्षेत्र एवं अतिशयक्षेत्र की कमेटियाँ अपने अधिकारक्षेत्र की वार्षिक आय में से मात्र पाँच प्रतिशत राशि देना प्रारम्भ कर दें, तो दिगम्बर समाज भी कल्याणजी आनन्द जी ट्रस्ट की तरह एक समृद्ध ट्रस्ट बनाकर अपने शाश्वत तीर्थों की स्थायी-रक्षार्थ व्यवस्था कर सकता है। दिगम्बर जैन समाज पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के बाद शेष राशि से ५% राशि सम्मेद शिखरजी रक्षार्थ ट्रस्ट बनाकर उसमें जमा कराने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो जावे, तो दिगम्बरों के दिगम्बरत्व की रक्षा करना कठिन नहीं रहेगा। आशा है भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम, उपनगर, नगर, महानगरों में रहनेवाली दिगम्बर जैन समाज का प्रत्येक व्यक्ति जागरूक होकर ईमानदारी का परिचय देगा। समस्त १०८ आचार्य भगवन्तों, उपाध्यायभगवन्तों, सर्वसाधु भगवन्तों, आर्यिका माताओं से भी सादर नमोऽस्तु, वन्दामिपूर्वक विनय है कि समाज में सिद्धक्षेत्र रक्षार्थ वातावरण बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें।

गुरुकुल रोड खुरई, (सागर) म.प्र.

सेवायतन में आवश्यकता

श्रीसेवायतन (मानव सेवा एवं ग्रामीण विकास का उपक्रम) के कार्यालय संचालन हेतु निम्नलिखित रिक्त पदों के लिए आवेदन प्रकाशन की तिथि से २० दिनों के अंदर निम्न पते पर आमंत्रित किये जाते हैं। यह कार्यालय मधुबन, शिखरजी, गिरीडीह में स्थित है। आवेदन के साथ प्रमाणपत्रों की छाया प्रतिलिपि एवं नवीनतम फोटो संलग्न करें।

१. जन सम्पर्क अधिकारी- स्नातक, जन सम्पर्क में डिप्लोमा, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा में दक्षता, कम्प्यूटर की जानकारी। उम्मीदवार को जन सम्पर्क से संबंधित सभी कार्यों का निष्पादन मधुबन एवं निदेशानुसार अन्य स्थानों में करना है।

२. लेखापाल-सह-कार्यालय अधीक्षक- कामर्स में स्नातक, किसी संस्थान में ५ वर्षों का अनुभव, कम्प्यूटर एकाउन्टेंसी, टेली कम्प्यूटर पत्राचार (हिन्दी, अंग्रेजी) में दक्षता। कार्यालय का कार्य सुचारु रूप से सम्पादित करने की क्षमता।

वेतन योग्यतानुसार एवं अनुभव पर अधारित होगा। सभी पदों पर स्थानीय योग्य एवं दक्ष जैन उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जायेगी।

अध्यक्ष- श्रीसेवायतन
वर्धमान हाउस, ए-१५, हरमू कॉलोनी,
राँची (झारखण्ड)
०६५१-२२४०५४८, ९४३११०१६२१

श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल, हैदराबाद

श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल, हैदराबाद का छठवाँ सत्र जून २००९ से प्रारम्भ हो रहा है। यहाँ अंग्रेजी माध्यम से ११वी, १२वीं, B.A., B. Com., B.Sc., C.A., C.S., ICWAI आदि पढाई की समुचित व्यवस्था है। अत: योग्य व रुचिवान् छात्र जिन्होंने १० वीं कक्षा में ७०% से अधिक अंक प्राप्त किये हों, उन छात्रों को ७ जून, २००९ से १४ जून २००९ तक आयोजित होनेवाले चयन शिविर में उपस्थित होने पर मैरिट लिस्ट के आधार पर प्रवेश दिया जायेगा। शिविर में उपस्थिति रहने वाले छात्रों को ही गुरुकुल में प्रवेश दिया जायेगा।

सम्पर्क सूत्र

शैलेन्द्र जैन शास्त्री ९४४१८५८६००
संजय जैन भैलसी ९९४८६९३१५०,

श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल
१५-२-२६२, जैन भवन, महाराजगंज,
हैदराबाद- १२ (आन्ध्रप्रदेश)
फोन : ०४०-२४६५१८२५, ६५५८६९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृद्धों के भरण-पोषण पर हुई कार्यशाला

प्रस्तुति- जसवीर राणा

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय की ओर से वृद्धों के भरणपोषण अधिनियम पर एक कार्यशाला का आयोजन प्रीतम मेमोरियल पब्लिक स्कूल खतौली, जिला मुजफ्फरनगर में किया गया। सेमिनार की अध्यक्षता करते हुए मंत्रालय की सीनियर रिचर्स आफीसर माननीया पूनम रानी ने वृद्धों के भरण-पोषण अधिनियम के बारे में चर्चा की। वेलफेयर सोसाइटी के अध्यक्ष माननीय मौ. आरिफ ने कहा कि सरकार द्वारा लाये गये इस अधिनियम से वृद्ध माता-पिता का भरण पोषण अब बच्चों को करना होगा। कार्यशाला में स्कूल के युवा बच्चों ने भी हिस्सा लिया, साथ ही सामाजिक संस्थाओं से जुड़े अनेक कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने विचार रखे। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि डॉ० ज्योति जैन ने विशेष रूप से निम्न बिन्दु विचारार्थ प्रस्तुत किये-

१. भारतीय संस्कृति 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' पर आधारित थी। आज स्थिति यह है कि वृद्धों के भरणपोषण पर कानून बनाने पड़ रहे हैं।

२. संयुक्त परिवार के विघटन ने परिवार, संस्था एवं आपसी रिश्तों नातों पर असर डाला है। यही कारण है कि पारिवारिक सुदृढ़ व्यवस्था आज छिन्न-भिन्न हो गयी है और बड़े-बूढ़े अलग-थलग पड़ गये हैं, वे अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं।

३. फिजिकल फिटनेस पर पर्याप्त ध्यान न देने कारण वद्ध व्यक्ति अनेक रोगों से घिर जाते हैं, जो अंततः स्वयं की एवं परिवार की परेशानी का कारण बनते हैं। अतः व्यक्ति को समय रहते अपने स्वास्थ्य एवं आहारचर्या पर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है।

४. सरकार की तरफ से वरिष्ठ नागरिकों को अनेक सुविधायें प्रदान की जाती हैं, पर जानकारी के अभाव में इनका उपयोग नहीं हो पाता है, वृद्धजन वृद्धावस्था पेंशन का भी लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। लेकिन तथ्य यह भी है कि देश समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार ने जनता को सुविधाओं से वंचित कर दिया है, वृद्ध व्यक्ति वैसे भी असहाय होते है। फिर सरकारी कार्यालयों में चक्कर लगाते-लगाते इतने परेशान हो जाते हैं कि वे अपने को भाग्य के सहारे छोड़ देते हैं।

५. बच्चों युवाओं की बदलती मानसिकता पर भी चर्चा हुई। जब बच्चों से पूछा गया कि कितने बच्चे अपने दादा-दादी या नाना-नानी के साथ रहते हैं, तो बहुत ही कम बच्चे हाथ उठा पाये। तब लगा कि नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में दूरी बढ़ती जा रही है।

६. बच्चों में बड़ों के प्रति सम्मान का भाव बने यह संस्कार अवश्य होना चाहिये। घर का वातावरण संस्कारों की नींव डालता है, यदि माता-पिता अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं तो बच्चों में भी यह भावना आती है।

७. बच्चों की बड़ों के प्रति संवेदनायें बनी रहें, तो पहल अपने को ही करनी पड़ेगी। किसी वृद्ध व्यक्ति को सड़क पार कराना, किसी जरूरतमंद का कागज पढ़ देना, सामान उठाकर रख देना, यदि उन्हें कोई तंग कर रहा है तो विरोध करना आदि छोटी-छोटी बातें उनके प्रति संवेदनायें बनाये रखने में सहायक होंगी।

८. भारतीय समाज में प्रचलित कथानकों पर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया। साहित्यकार प्रेमचंद की लिखी कहानी 'बूढ़ी काकी' या दादा जी का टूटा फूटा कटोरा देने वाली माँ की कहानी आदि सुनाकर वृद्धों के प्रति होनेवाले अन्यायों की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसके साथ ही सिक्के के दूसरे पहलू, जहाँ वयोवृद्ध जनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, उस पर चर्चा हुई। आज भी अनेक घरों में महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में बड़ों की प्रभावशाली भूमिका रहती है। घर के सुख-दुख प्यार-दुलार सभी में उनकी सहभागिता रहती है। किसी ने अपनी ताऊ जी को, तो किसी ने अपनी माँ को, तो किसी ने अपने चाचा को स्मरण किया एवं आभार व्यक्त किया कि उनके कारण आज वो अपने जीवन में सफल हैं।

९. बढ़ती हुई पीढ़ी के अंतराल ने भी अनेक पारिवारिक समस्याओं को जन्म दिया है। एक-दूसरे के कार्यों मे अनावश्यक हस्तक्षेप को यदि कम कर दिया जाये, तो बहुत सी समस्यायें सुलझ सकती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. संवादहीनता ने अकेलेपन को जन्म दिया है। परिवार में रहते हुये भी अनबोलापन होना अकेलेपन का अहसास कराता है। अतः घर के सभी सदस्यों में संवाद की स्थिति होनी चाहिये। **एक समय का भोजन सभी मिलकर अवश्य करें।**

यदि इन सब बातों का थोड़ा भी चिंतन करें, तो कोई वृद्ध असहाय नहीं होगा और '**मातृदेवो भव, पितृदेवोभव**' की जीवंत संस्कृति को हम अगली पीढ़ी तक पहुँचा पायेंगे।

प्रबन्धक- प्रीतम मेमोरियल पब्लिक स्कूल,
खतौली, जिला- मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

सांगानेर-छात्रावास प्रवेश सूचना

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, सांगानेर का आगामी शैक्षणिक सत्र १ जुलाई २००९ से प्रारम्भ होने जा रहा है। आधुनिक सुखसुविधाओं, हरे-भरे **खेल मैदान एवं शिक्षण आदि की समस्त सुविधायें निःशुल्क उपलब्ध हैं।**

छात्रावास में प्रवेश के पश्चात् छात्र को ५-७ वर्ष तक छात्रावास में रखते तथा शास्त्री, आचार्य तक का अध्ययन कराकर एक योग्यतम निष्णात विद्वान् बनाकर देश एवं समाज की सेवार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

यहाँ से स्नातक, स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण छात्र अपने विषय के पारंगत विद्वान् तो हो ही जाते हैं, साथ ही वे सरकार द्वारा आयोजित आई.ए.एस., आई.पी.एस., आर.ए.एस., एम.बी.ए. आदि सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अपना भविष्य निखार सकते हैं।

छात्रावास में दसवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्र को ही प्रवेश दिया जाता है। इस हेतु देश में इस वर्ष निम्न स्थानों पर प्रवेश शिविर लगाए जा रहे हैं, जिनमें जिन छात्रों ने दसवीं कक्षा की परीक्षा अंग्रेजी विषय के साथ दे दी है, वे भाग ले सकते है, (भले ही परिणाम न आया हो)। शिविरार्थियों को सात दिन के धार्मिक प्रशिक्षण के पश्चात् परीक्षा एवं साक्षात्कार के उपरांत प्रवेश दिया जाता है।

जो अभिभावक अपने-अपने बच्चों को सुयोग्य एवं सुसंस्कृत नागरिक एवं योग्य विद्वान् बनते देखकर गौरवान्वित होना चाहते हैं, इस भारत विख्यात संस्थान में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाकर लाभ ले सकते है।

संस्थान का सम्पर्क सूत्र : श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान,
महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, जैन नसियाँ रोड, वीरोदय नगर,
सांगानेर, जयपुर (राज.) फोन : ०१४१-२७३०५५२, ३२४१२२२, ९४१४७८३७०७

चयन शिविर कहाँ-कहाँ	**कब से कब तक**
श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, जिला- छतरपुर (म.प्र.) फोन : ०७६८९-२८०९७२, ९८२६६५३९९५	**१० मई से १६ मई २००९**
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कुम्भोज बाहुबली, जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र) फोन : ०९४१२२६४४४५	**१ जून से १० जून २००९**
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, जैन नसियाँ रोड, वीरोदय नगर, सांगानेर, जयपुर (राजस्थान)	**१४ जून से २१ जून २००९**

डॉ० शीतलचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पठन-पाठन में समाविष्ट विकृतियाँ

डॉ० आराधना जैन 'स्वतंत्र'

पठन-पाठन साक्षर व शिक्षित होने का साधन है। सुसंस्कारित जीवननिर्माण और जीवनयापन का श्रेष्ठतम साधन है। यह सुसंस्कृत सभ्य समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहायक है, समय का सदुपयोग तो होता ही है। वर्तमान में पठन-पाठन में अनेक विकृतियाँ आ गयी है, जिन्हें देख-सुनकर मन में अति पीड़ा होती है। एक घटना इस प्रकार है-

एक बार सागर में मेरा एक परिचित के यहाँ रुकना हुआ। मैं प्रातः दैनिक क्रिया से निवृत्त होने के लिए शौचालय गयी, तो वहाँ देखा कि 'गृहशोभा', 'सरिता', 'मुक्ता' तथा कुछ समाचार पत्र रखे हुए हैं। यह देख मन में अनेक प्रश्न उठे, पर स्वयं संतोषजनक समाधान न पा सकी, तो विचारा कि जिनके द्वारा ये पुस्तकें रखी गई हैं, उनसे ही अपनी जिज्ञासा शान्त की जावे। मैंने उनसे सहज ही प्रश्न किया- ''आपके इतने बड़े घर में पुस्तकें रखने कहीं जगह नहीं है, जो आपको शौचालय में पुस्तकें रखनी पड़ीं या अन्य कोई कारण है?'' वे बोले ऐसा कोई कारण नहीं है। हमारे बच्चे को शौचालय में आधा घण्टा लगता है, अतः वह वहाँ बैठकर पढ़ता है। सुनकर मन में आश्चर्य हुआ और खेद भी। इस घटना से हमारे सामने कई प्रश्न उपस्थित होते हैं-

१. पुस्तकें कहाँ रखनी चाहिए?
२. पुस्तकें कहाँ बैठकर पढ़नी चाहिए?
३. पुस्तकें किस समय / कब पढ़नी चाहिए?
४. किस आसन से किस तरह बैठकर पढ़नी चाहिए?
५. शौचालय में मलविसर्जन हेतु न्यूनतम व अधिकतम समय कितना होना चाहिए आदि।

आलेख के विषय के अनुसार प्रथम प्रश्न पर विचार करते हैं। हम सभी जानते हैं कि पुस्तकें ऐसे सुरक्षित स्थान पर रखनी चाहिए, जिससे उनका धूल, धूप, नमी, दीपक, सूक्ष्म जीव तथा चूहे आदि पुस्तकों को हानि पहुँचानेवाले जीवों से बचाव हो सके। इस हेतु पुस्तकों पर आवरण चढ़ाकर, वेष्टन में बाँध कर आलमारी में रखने की हमारी परम्परा है। शौचालय में नमी तो रहती ही है, अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति प्रतिसमय होती रहती है अतः वहाँ पुस्तकें रखना अनुचित ही है। पुस्तकें सुरक्षित स्थान पर रखकर उन्हें अधिक समय तक स्थायित्व प्रदान करना चाहिए।

पुस्तकें कहाँ पढ़ना चाहिए? यहाँ 'कहाँ से' तात्पर्य है पुस्तक पढ़ने का स्थान। सामान्यतया घर, विद्यालय, वाचनालय, मन्दिर आदि स्थानों पर बैठकर पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। यह अवश्य है कि हमारे पठन-पाठन का स्थान साफ स्वच्छ, हवा एवं प्रकाशवान् हो, जिससे अध्ययन-लेखन आदि में बाधा न हो सके।

अध्ययन करने का सर्वश्रेष्ठ समय कौनसा है? हमारी संस्कृति में प्रातःकालीन ब्रह्ममुहूर्त का समय अध्ययन के लिए सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। इससमय शुद्ध हवा बहती है। नींद पूरी होने से शारीरिक थकान समाप्त हो जाती है। मन मस्तिष्क स्वस्थ होता है, अतः इस समय पढ़ा हुआ जल्दी याद होता है। सन्धिकाल में सिद्धान्तग्रन्थों के स्वाध्याय का निषेध है। शेष समय में अपनी सुविधानुसार अध्ययन किया जा सकता है। सामान्यतया एक विषय एक अन्तमुहूर्त तक पढ़ना चाहिए। इससे अधिक समय तक एक विषय में एकाग्रता नहीं रह पाती है। विद्यालयों-महाविद्यालयों में भी एक विषय के पढ़ने-पढ़ाने का समय ४५ मिनिट का होता है। अनन्तर विषयपरिवर्तन करें या कुछ समय बाद वही विषय पढ़ें।

हमें कैसे पढ़ना चाहिए? इस प्रश्न का समाधान हमारी संस्कृति में निर्देशित है। पढ़ने के लिए विद्यार्थी को किसी कुचालक वस्तु लकड़ी या चटाई आदि आसन पर बैठना चाहिए। रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए। पुस्तक हमारी आँख से लगभग एक फुट दूर होना चाहिए। प्रकाश पीछे की ओर से आये, जिससे सीधे आँख पर उसका प्रभाव न पड़े। रात्रि में टेबिल लैंप के प्रकाश में पढ़ने से आँखों पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। टेबिल कुर्सी पर बैठ कर पढ़ने की विधि भी ठीक है।

वर्तमान में पठन-पाठन में समाविष्ट अनेक विकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जैसे-

कक्षा एक में पढ़ने की उम्र ६ वर्ष निर्धारित है पर ढाई-तीन वर्ष की उम्र में छात्र को शाला में भर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करा दिया जाता है।

छोटे छात्रों के वजन से उनके बस्ते का वजन अधिक होता है, इन छोटे बच्चों को नींद आने पर भी माता-पिता उन्हें जगाकर, डरा-धमकाकर होमवर्क पूरा कराते हैं।

पहले गुरुकुलों में छात्र हाथ पैर धो कर पढ़ने बैठते थे, पर आज जूते चप्पल पहने ही विद्यार्थी अध्ययन करते हुए दिखाई देते हैं।

प्रतिस्पर्धा के इस युग मे विद्यार्थी को आठ घण्टे के स्थान पर अठारह से बीस घण्टे तक पढ़ना पड़ता है, जिससे उसकी दिनचर्या और स्वास्थ्य दोनों प्रभावित होते हैं।

छात्र एकाग्रतापूर्वक अध्ययन नहीं करते हैं। वे पढ़ते समय कुछ न कुछ खाते रहते हैं। कुछ टी.वी. देखते हुए या गाने सुनते हुए पढ़ना पसंद करते हैं। इसकारण उन्हें जल्दी याद नहीं होता। कुछ छात्र घूम-घूम कर पढ़ते हैं, तो कुछ लेटकर पढ़ते हैं। यह पढ़ने का तरीका ठीक नहीं है।

रात में सोने का समय होता है, उस समय नींद आना स्वाभाविक है। अत: विद्यार्थी नींद भगाने के लिए रात में घंटे दो घंटे के अंतर से चाय-काफी का सेवन करते रहते है, जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में जब उठने का समय होता है उस समय छात्र पढ़कर थकान उतारने के लिए सोना पसंद करता है। प्रात: चार बजे से आठ बजे तक सो कर वह अपनी थकावट दूर करता है।

पठन-पाठन में बहुतायत से अँग्रेजी माध्यम के कारण छात्र हिन्दी मातृभाषा और गणित के अंकों को नहीं समझते हैं। केलकुलेटर और कम्प्यूटर के उपयोग से याददाश्त कम होने लगी है। अध्ययन का उद्देश्य मात्र डिग्री प्राप्ति और सर्विस करना है। आज अध्यापन कार्य व्यवसाय बन गया है। अत: हमारा कर्त्तव्य है कि संस्कृति की सुरक्षा और स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए पठन-पाठन करें और विकृतियों से बचाव करें।

भगवान् महावीर मार्ग
गंजबासौदा (विदिशा) म.प्र.

GATE की वरीयता सूची में अमित जैन

इन्दौर। आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, जंवेरी बाग, नसिया में रहकर B.E. कर रहे छात्र अमित जैन, अशोक नगर ने M. Tech की प्रवेश परीक्षा GATE में ९९.३३% अंक प्राप्त कर अपना नाम पूरे भारत की वरियता सूची में दर्ज कराया है एवं देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर से बी.ई. में ९३% अंक प्राप्त कर विश्वविद्यालय में अव्वल रहे।

भरतकुमार जैन, निदेशक
आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास
जवेरी बाग, नसिया, इन्दौर (म.प्र.)

श्री आदित्य कुमार जैन-कलकत्ता को सुयश

श्री महेन्द्र कुमार जी जैन- फर्म मानक चन्द्र, महेन्द्र कुमार- कलकत्ता के सुपुत्र आदित्य जैन ने वर्ष २००७-२००८ की भारतीय कंपनी सेकेट्रीज की परीक्षा में ८वाँ स्थान प्राप्त किया है और २००८-२००९ की भारतीय चार्टर्ड एकाउन्टेंट की परीक्षा में अपने प्रथम प्रयास में ४७वाँ स्थान प्राप्त कर पूरे जैन समाज का नाम भारत में रोशन किया है। मैं आदित्य के उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना करता हूँ।

राजेन्द्र कुमार जैन
६७/५०, स्ट्राण्ड बैंक रोड, कलकत्ता (नापिस पट्टी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, दुधई

आशीष कुमार जैन शास्त्री

धर्म और संस्कृति के प्रति लगाव ही मुझे सदैव जैनधर्म की उन धरोहरों को अनायास देखने का निमित्त प्रदान करता है, जिनका दर्शन शायद जीवन में संभव न हो। फिर भी मैं अपनी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति समीचीन श्रद्धा को ही इसका एक प्रबल निमित्त मानता हूँ। अवसर था एक मित्र के साथ वंशा बम्हौरी जाने का, उसकी तो स्कूल में ट्रेनिंग चल रही थी। मैं खेतों में गया और गाँववालों से पूछ रहा था कि क्या आपके गाँव में कोई दर्शनीय स्थल है। गाँववालों ने बताया कि यहाँ से ६ कि.मी. दूर एक दुधई नाम का ग्राम है, जहाँ पर एक जैनमंदिर है, परन्तु रास्ता जंगल का है। मेरे मन में तुरन्त वहाँ जाने का विचार आया और गाँव के एक व्यक्ति को साथ लेकर मोटरसाइकिल से रवाना हो गया। मन में थोड़ा सा भय था कहीं ऐसा न हो कोई घटना घट जाये, क्योंकि मैं अजनबी क्षेत्र में हूँ। फिर मन ही मन प्रश्न उठा कि क्या तुम्हें जिनेन्द्रभगवान् पर श्रद्धा नहीं है, जो तुम भयभीत हो रहे हो? बस फिर क्या था मैं निराकुल भाव से उस स्थन पर पहुँच गया। प्रथम दृश्य तालाब का था। एक बहुत विशाल तालाब, जो जलविहीन, पर खेत-खलिहान से सहित था। दूर-दूर तक कोई मानव नहीं दिख रहा था। न ही कोई पशु-पक्षी, बिल्कुल सुनसान। लेकिन जैसे मैं मंदिर के पास पहुँचा, तो मेरा पहुँचना सार्थक हो गया। मैंने चारों ओर देखा कि जैन मंदिर कौन-सा है? पर समझ नहीं आ रहा था। यकायक मेरी नजर एक धुंधले से शब्दों में लिखे 'श्री दिगम्बर जैन मंदिर, दुधई' पर पड़ी। मैं शीघ्रता से वहाँ पहुँचा। जिनमंदिर को देखकर मेरे आह्लाद की तो सीमा नहीं रही और वह इतना प्राचीन जिसके विषय में कहना मेरे वश के बाहर है। मंदिर की संरचना गुफानुमा है। एक छोटा सा गेट है। करीब ३५फुट की मूर्ति होगी। उस खड्गासन प्रतिमा के दायें बायें भी प्रतिमायें बनी हुई हैं, जो मंदिर की दीवार वाले पत्थर पर ही उकेरी गई हैं। मैं गर्मी की तपन में वहाँ पहुँचा था, पर उस जिनालय में पहुँचकर मैंने ठंडक का अनुभव किया। ठीक उसी मंदिर के सामने एक पद्मासन प्रतिमा का जिनालय बना हुआ है। उसमें छोटी-छोटी प्रतिमायें मिलाकर अनेक प्रतिमाएँ चारों ओर बनी हुई हैं। रक्षकदेव-देवी भी वहाँ विराजमान हैं। परन्तु इस जिनालय का गेट बिल्कुल खुला हुआ है। जिनालयों के बाहर भी कुछ प्रतिमा खण्डित स्थिति में पड़ी हुई हैं। कई प्रतिमायें प्राचीन समय की कला का अद्भुत नमूना हैं। कुछ सामान्यकला के नमूने के रूप में शृंगार की प्रतिमायें भी वहाँ पड़ी हुई हैं। वह एक भव्य जैनमंदिर है, जो ललितपुर से पाली और पाली से करीब श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बालवेहट के मार्ग पर १५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। वंशाबम्हौरी से पहले ही दुधई जाने का मार्ग बना हुआ है। दुधई से जंगल के रास्ते से देवगढ़ की दूरी केवल २५ कि.मी. है। अतः सभी जैन भाइयों को एक बार अवश्य उस मंदिर के दर्शन करना चाहिये, जिससे हमें अपनी जैनसंस्कृति का संपूर्ण ज्ञान हो सकें।

कटारे मोहल्ला, शाहगढ़, सागर म.प्र.

जिनभाषित के आजीवन सदस्यों से निवेदन

'जिनभाषित' का मुद्रण-प्रेषण अत्यधिक व्ययसाध्य हो गया है। अतः उसका आजीवन सदस्यता शुल्क ११०० रुपये एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क १५० रुपये करने के लिए हम विवश हुए हैं। आजीवन सदस्यों से अनुरोध है कि वे शेष राशि ६०० रुपये यथाशीघ्र भेजने की कृपा करें।

रतनलाल बैनाड़ा
प्रकाशक- 'जिनभाषित' सर्वोदय जैन विद्यापीठ
१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी आगरा- २८२००२ (उ० प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता- जिनेन्द्र कुमार जैन 'एडवोकेट' दिल्ली

जिज्ञासा- 'भाण्ड' शब्द का क्या अर्थ होता है?

समाधान- बाह्य परिग्रह के दस भेद कहे गए हैं-क्षेत्र-वास्तु, हिरण्य-स्वर्ण, धन-धान्य, दासी-दास, कुप्य और भाण्ड। इनमें से भाण्ड शब्द का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये-

१. मूलाचार गा. ४०८ की टीका में कहा है- कपास आदि कुप्य कहलाते हैं और हींग, मिर्च आदि को 'भाण्ड' कहते हैं।

२. संस्कृत-हिन्दी आप्टे कोष में भाण्ड का अर्थ इस प्रकार दिया है- पात्र, बर्तन, बासन (थाली, कटोरी, गिलास) औजार या उपकरण तथा मिर्च-मसाले आदि।

उपर्युक्त प्रमाणों से भाण्ड शब्द का अर्थ विभिन्न धातु एवं विभिन्न प्रकार के बर्तन, विविध प्रकार के यंत्र तथा घर के काम में आनेवाले मसाले आदि लेने चाहिए।

जिज्ञासा- मुनियों के पाँच भेदों में जो निर्ग्रन्थ भेद है, उनका उपपाद पहले-दूसरे स्वर्ग तक कहा गया है। निर्ग्रन्थों का गुणस्थान ११वाँ भी है। तो क्या ११वें गुणस्थान वाले मुनि मरण करके सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं?

समाधान- आपका प्रश्न बहुत उचित है। निर्ग्रन्थ मुनिराजों का गुणस्थान ११वाँ एवं १२वाँ होता है। १२वें गुणस्थानवर्ती मुनिराज तो उसी भव से मोक्ष पधारते ही हैं, जबकि ११वें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थों का भवक्षय हो जाने पर मरण भी संभव है। सर्वार्थसिद्धि ९/४७ की टीका में उपपाद का वर्णन करते हुए आ. पूज्यपाद स्वामी ने कहा है कि-

'सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु'

अर्थ- इन सभी का (पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक मुनियों का) जघन्य उपपाद सौधर्म कल्प में दो सागरोपम की स्थिति वाले देवों में होता है। राजवार्तिक में भी इसी प्रकार कथन है।

यहाँ विचारणीय विषय है कि क्या ११ वें गुण-स्थान में उत्कृष्ट शुक्ललेश्या में मरण कर मुनिराज सौधर्म कल्प में पीत लेश्या में उत्पन्न हो सकते हैं?

इस संबंध मे निम्न प्रमाणों पर विचार करना उचित है-१. राजवार्तिक ४/२२/१० में इस प्रकार कहा है-

अर्थ- उत्कृष्ट शुक्ल लेश्यावाला आत्मा मरण करके सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त होता है। मध्यम शुक्ल लेश्या परिणामों से आनत स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि से पूर्व तक उत्पन्न होता है तथा जघन्य शुक्ल लेश्या से शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार को जाता है। उत्कृष्ट पद्म लेश्या परिणामों से सहस्रार, मध्यम पद्म लेश्या से ब्रह्म स्वर्ग से शतार तक तथा जघन्य पद्म लेश्या से सानत्कुमार तथा माहेन्द्र में उत्पन्न होता है। उत्कृष्ट पीत लेश्या से सानत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के चक्रेन्द्रक श्रेणी विमान तक, मध्यम पीत लेश्या से चन्द्रादि तक तथा जघन्य पीत लेश्या से सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के प्रथम इन्द्रक श्रेणी विमान तक उत्पन्न होता है।

भावार्थ- ११वें गुणस्थान में निर्ग्रन्थ मुनिराजों की उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है, अतः यदि वे ११वें गुणस्थान में मरण करते हैं, तो उनका जन्म सर्वार्थसिद्धि विमान में होना चाहिये, ऐसा उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट होता है।

२. श्री धवला पु. २ पृ. ५५९ पर इस प्रकार कहा है-

प्रश्न- असंयत सम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्त काल में औपशमिक सम्यक्त्व कैसे पाया जाता है?

उत्तर- वेदक सम्यक्त्व को उपशमाकर के और उपशम श्रेणी में चढ़कर फिर वहाँ से उतरकर प्रमत्त संयत, अप्रमत्त संयत, असंयत और संयतासंयत उपशम सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों से मध्यम तेजोलेश्या को परिणत होकर और मरण करके सौधर्म-ऐशान कल्पवासी देवों में उत्पन्न होनेवाले जीवों में अपर्याप्त काल में औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है। तथा उपर्युक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव (यथायोग्य उत्तरोत्तर विशुद्ध लेश्या से मरण करे तो) सानत्कुमार और माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। तथा उपशम श्रेणी पर चढ़कर के और पुनः उतरकर के मध्यम शुक्ल लेश्या से परिणत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हुए यदि मरण करते हैं तो उपशम सम्यक्त्व के साथ आनत-प्राणत, आरण-अच्युत और नव ग्रैवेयक विमानवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। तथा पूर्वोक्त सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या को परिणत होकर यदि मरण करते हैं तो उपशम सम्यक्त्व के साथ ९ अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। इस कारण सौधर्मस्वर्ग से लेकर ऊपर के सभी असंयत सम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्त काल में औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है।

भावार्थ- श्री धवला जी के उपुर्यक्त प्रमाण से यह स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ मुनिराजों का सौधर्म कल्प में उपपाद तब ही संभव है **जब वे ११वें गुणस्थान की उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या से गिरकर चौथे से सातवें गुणस्थान तक मध्यम तेजोलेश्या में आकर मरण करें।** अर्थात् ११वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ मुनिराज मरण करके सौधर्म ऐशान कल्प में उत्पन्न नहीं हो सकते, जब तक कि वे मध्यम तेजोलेश्या में तथा चौथे से सातवें गुणस्थान तक में आकर मरण न करें। यदि वे 'निर्ग्रन्थ' अवस्था में ही मरण करते हैं अर्थात् ११ वें गुणस्थान में मरण करते हैं, तो उनका जन्म अनुदिश और अनुत्तर विमानों में ही होगा, उससे नीचे नहीं।

प्रश्नकर्ता- सौ. चन्द्रप्रभा जैन, रेवाड़ी

जिज्ञासा- क्या पुण्य भी कई प्रकार का होता है?

समाधान- आचार्यों ने पुण्य के भी विभिन्न भेद किये हैं-

१. समयसार गा. २३९/२४२ की आ. जयसेन की टीका में पुण्य के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है- कोई एक (मिथ्यादृष्टि) जीव नवीन पुण्य कर्म के निमित्तभूत शुभकर्मानुष्ठान को भोगाकांक्षा के निदान रूप से करता है, तब वह पापानुबंधी पुण्यरूप राजा कालान्तर में उसको विषयभोग प्रदान करता है। वे निदानबंधपूर्वक प्राप्त भोग भी रावण आदि की भाँति उसको अगले भव में नरकादि दु:खों की परम्परा प्राप्त कराते हैं। (अर्थात् निदान-बंधपूर्वक किये गये पुण्यरूप शुभानुष्ठान तीसरे भव नरकादि गतियों के कारण होने से पापानुबंधी पुण्य कहलाते हैं।) कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव निर्विकल्प समाधि का अभाव होने के कारण अशक्यानुष्ठानरूप विषयकषाय-वंचनार्थ यद्यपि व्रत, शील, दान, पूजादि शुभकर्मानुष्ठान करता है, परन्तु (मिथ्यादृष्टि की भाँति) भोगाकांक्षारूप निदानबंध से उसका सेवन नहीं करता है, उसका वह कर्म पुण्यानुबंधी है, भवांतर में जिसके अभ्युदयरूप में उदय में आने पर भी वह सम्यग्दृष्टि पूर्वभव में भावित भेदज्ञान की वासना के बल से भोगों की आकांक्षारूप निदान या रागादिक परिणाम नहीं करता है, जैसे भरतेश्वरादि। अर्थात् निदानबन्ध रहित बाँधा गया पुण्य सदा पुण्यरूप से ही फलता है। पाप का कारण कदाचित् भी नहीं होता। इसलिए पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है।

उपर्युक्त प्रमाण में पुण्य के २ भेद बताये गये हैं, पापानुबंधी और पुण्यानुबंधी। जिनके फल स्पष्ट रूप से ऊपर बताये गये।

२. श्री आदिपुराण भाग २ पृ. ६० में इस प्रकार कहा है-

पुण्यं जिनेन्द्रपरिपूजनसाध्यमाद्यं,
पुण्यं सुपात्रगतदानसमुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्,
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्॥ २१९॥

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने से उत्पन्न होनेवाला पहला पुण्य है, सुपात्र को दान देने से उत्पन्न हुआ दूसरा पुण्य है, व्रतपालन करने से उत्पन्न हुआ तीसरा पुण्य है और उपवास करने से उत्पन्न हुआ चौथा पुण्य है। इस प्रकार पुण्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों को उपर्युक्त लिखे हुए ४ प्रकार के पुण्यों का संचय करना चाहिये।

इस आगम प्रमाण में पुण्य को ४ प्रकार का बताया गया है। ये दोनों भेद अलग-अलग विवक्षा से किये गये हैं।

प्रश्नकर्ता- हजारीलाल जैन, आगरा

जिज्ञासा- तेरहवें गुणस्थान में असातावेदनीय का स्वमुख उदय होता है या वह सातावेदनीय रूप से संक्रमित होकर उदय में आता है?

समाधान- तेरहवें गुणस्थान में असातावेदनीय का स्वमुख उदय पाया जाता है, परन्तु उसकी अनुभाग शक्ति अनन्तगुणी हीन होने तथा मोहनीय कर्म का अभाव होने के कारण उसका अप्रकट सूक्ष्म उदय रहता है। इसके साथ ही केवली भगवान् के विशेष विशुद्धता होने के कारण, उनके प्रति-समय बँधकर अगले समय में उदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आनेवाला सातावेदनीय अनन्तगुणा अनुभागवाला होता है, जिस कारण से असातावेदनीय का उदय प्रतिहत हो जाता है। इस प्रकार दुःखरूप फल के अभाव में भी असातावेदनीय का स्वमुख उदय मानना आगमसम्मत है। कुछ आगम प्रमाण इस प्रकार हैं-

१. श्री धवला पुस्तक १२/२४ में कहा है- 'प्रश्न है कि असातावेदनीय का वेदन करनेवाले तथा क्षुधा तृषा आदि ११ परिषहों द्वारा बाधा को प्राप्त हुए केवली भगवान्.....।'

२. प्रमेयकमलमार्तण्ड पृष्ठ ३०३ पर कहा है- 'असातावेदनीय के विद्यमान होते हुये भी मोहनीय के अभाव में असमर्थ होने से, वे केवली भगवान् को क्षुधा सम्बन्धी दुःख को करने में असमर्थ हैं।

३. प्रवचनसार गाथा २० की तात्पर्यवृत्ति टीका में इस प्रकार कहा है- 'केवली भगवान् के असातावेदनीय के उदय की अपेक्षा सातावेदनीय का उदय अनन्तगुणा है। इस प्रकार शक्कर की बड़ी राशि के बीच में नीम की एक कणिका की भांति असातावेदनीय का उदय होने पर भी नहीं जाना जाता है।

४. राजवार्तिकक अध्याय ९/११ की टीका में कहा है- अन्तरायकर्म का अभाव हो जाने से प्रतिक्षण शुभ कर्मपुद्गलों का संचय होते रहने से, प्रक्षीणसहाय वेदनीय-कर्म (असातावेदनीय) विद्यमान रहकर भी अपना कार्य नहीं कर सकता।

५. सर्वार्थसिद्धि पृ. ३३९ पर कहा है- 'केवली जिन के साता का आस्रव सदाकाल होने से उसकी निर्जरा भी सदाकाल होती रहती है। इसलिए जिस काल में असाता का उदय होता है उस काल में केवल उसका ही उदय नहीं होता, किन्तु उससे अनन्तगुणी शक्तिवाले साता के साथ वह उदय में आता है। माना कि उसका उस समय स्वमुख से उदय है, पर वह प्रतिसमय बँधने वाले साता कर्म परमाणुओं की निर्जरा के साथ ही होता है, इसलिए असाता का उदय वहाँ क्षुधादि रूप वेदना का कारण नहीं हो सकता।

जिज्ञासा- क्या मुनि ही अगले भव में इन्द्र बनते हैं या अन्य भी?

समाधान- इस प्रकरण में श्री आदिपुराण भाग २ पृष्ठ २५७ पर कहा है-

तथायोगं समाधाय कृतप्राणविसर्जनः।
इन्द्रोपपादमाप्नोति गते पुण्ये पुरोगताम्॥ १०९॥
इन्द्राः स्युस्त्रिदशाधी शास्तेषूत्पादस्तयोबलात्।
यः स इन्द्रोपपादः स्यात्क्रियाऽर्हन्मार्गसेविनाम्॥ १९१॥

अर्थ- ऊपर लिखे अनुसार योगों का समाधान कर, अर्थात् मन, वचन, काय को स्थिर कर जिसने प्राणों का परित्याग किया है, ऐसा साधु पुण्य के आगे-आगे चलने पर इन्द्रोपपाद क्रिया को प्राप्त होता है॥ १९०॥ देवों के स्वामी इन्द्र कहलाते हैं, तपश्चरण के बल से उन इन्द्रों में जन्म लेना इन्द्रोपपाद कहलाता है। वह इन्द्रोपपाद क्रिया अर्हत्प्रणीत मोक्षमार्ग का सेवन करनेवाले जीवों के ही होती है॥ १९१॥

उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार महान् तपस्वी, मोक्षमार्ग पर चलने वाले साधु ही इन्द्रपद प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा-२८२ ००२, उ० प्र०

कुरगुवाँ जी (झाँसी, उ.प्र.) में पंचकल्याणक सम्पन्न

पंचकल्याणकों में लाखों, करोड़ों की धनराशि पानी की तरह बहा देने की परम्परा से हटकर बिना हाथी-घोड़े और तामझाम के विशाल भव्य भगवान् नेमीनाथ जिनबिम्ब प्रतिष्ठा पंचकल्याणक एवम् अहिंसा दिव्य गजरथ का भव्य आयोजन जैन तीर्थ करगुवाँ जी में दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य अध्यात्मयोगी मुनिश्री सरल सागर जी महाराज के सान्निध्य में २३ फरवरी से १ मार्च २००९ तक सम्पन्न हो गया। इस आयोजन से समूचे भारतवर्ष की जैनसमाज के सामने एक आदर्श स्थापित हुआ है कि समाज का पैसा कैसे सदुपयोग में लगाया जा सकता है, तो वहीं भगवान महावीर की अहिंसा को सही मायने में चरितार्थ भी किया जा सकता है। पूरे पंचकल्याणक में बोलियों को न लगाने का संकल्प इस आयोजन को अनूठा सिद्ध करता है।

प्रवीण कुमार जैन (महामंत्री) दिगम्बर जैन पंचायत ३४, चन्द्रशेखर आजाद, झाँसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण ज्ञान भारती मथुरा : छात्र प्रवेश सूचना

संस्थान का मुख्य उद्देश्य पाँच वर्षों में धार्मिक शिक्षा के साथ प्रतिष्ठा-विधि-विधान व वास्तुज्ञान आदि में योग्य विद्वानों को तैयार करना है। आधुनिक लौकिक शिक्षा की छात्रावास में ११वीं से स्नातक पर्यन्त अध्ययन की व्यवस्था की गई है। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्र नगर के प्रतिष्ठित महाविद्यालयों में बी.कॉम, बी.एस.सी, बी.सी.ए., बी.बी.ए. कम्प्यूटर साइंस आदि लौकिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहाँ पर छात्रों को आवास एवं भोजन आदि की सुविधा नि:शुल्क उपलब्ध है। विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी नवीन सत्र में प्रवेश हेतु चयन शिविर का आयोजन किया जा रहा है। अत: जिन छात्रों ने १०वीं (हाईस्कूल) की परीक्षा उत्तीर्ण की है तथा प्रवेश के इच्छुक हैं, वे शीघ्र ही अपना आवेदन-पत्र एवं बायोडाटा (छायाचित्र सहित) १० जून २००९ तक निम्न पते पर भेज सकते हैं। ५५% से कम अंक प्राप्त करनेवाले छात्र आवेदन न करें।

जिनेन्द्र जैन शास्त्री 'अधीक्षक' श्रमण ज्ञान भारती जैन चौरासी,
कृष्णा नगर मथुरा (उ.प्र.) फोन: ०५६५-२४२०३२३,

श्री दिगम्बर जैन मोहिनीदेवी बडजात्या वानप्रस्थ आश्रम, वीरोदय मंदिर वीरोदय नगर सांगानेर जयपुर

फोन नं. ०१४१-२७३१९५२, २७३०३९०

परमपूज्य प्रात: स्मरणीय संत शिरोमणी आचार्यश्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के आशीर्वाद एवं उनके परम शिष्य मुनिपुंगव श्री १०८ सुधासागरजी महाराज की प्रेरणा से निर्मित एवं प्रबन्धकारिणी कमेटी, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी सांगानेर (जयपुर) राज. द्वारा संचालित, श्री दिगम्बर जैन मोहिनीदेवी वानप्रस्थ आश्रम में रहने हेतु श्री दिगम्बर जैन समाज के वानप्रस्थी व्यक्ति अपनी मुख्य जिम्मेदारियों से मुक्त जो कि अपने जीवन के शेष समय को धार्मिक वातावरण एवं सामाजिक गतिविधियों में बिताना चाहते हैं, उनके लिये आवेदन पत्र स्वीकार किये जा रहें है।

आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज व मुनिश्री सुधासागरजी महाराज के आशीर्वाद से एवं चयन कमेटी के निर्णयानुसार ही वानप्रस्थी का चयन किया जायेगा एवं चयनसमिति का निर्णय ही अन्तिम एवं सर्वमान्य होगा। कृपया पात्रता आदि के बारे में जानने के लिये निम्न पते पर सम्पर्क किया जा सकता है। फ्लेट सीमित हैं तथा फ्लेटों का आवंटन पहले आवो पहले पावो के आधार पर किया जायेगा।

रतनलाल बैनाडा 'अधिष्ठता'
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
सांगानेर, जयपुर राज.
मोबाईल - ०९४१२२६४४४५

नरेन्द्रकुमार पाण्डया 'मानद मंत्री'
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंन्दिर
संघीजी, सांगानेर, जयपुर राज.
मोबाईल - ०९८२९०१७५३३

श्रीमती प्रेमलता लुहाड्या का निधन

श्रीमती प्रेमलता (धर्मपत्नी स्व० श्री वैजनाथ जी लुहाड्या) वागफरजाना, आगरा का स्वर्गवास दि० ९.३.०९ रात्रि १० बजे अत्यंत शांतपरिणाम-पूर्वक हो गया। आपने अस्पताल जाने के लिये अनिच्छा जाहिर की थी। आपके सुपुत्रों ने उनकी स्मृति में रु०१,११,१११/- का दान घोषित किया है। 'जिनभाषित' को भी रु०१०००/- प्राप्त हुआ है। हम सभी उनकी सद्गति की मंगल कामना करते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

दोहरे गणित

जिन्दगी में
हमारे चाहे/अनचाहे
बहुत कुछ
हो जाता है
हमारा मनचाहा हुआ
तो लगता है
यह हमने किया
हमारा अनचाहा हुआ
तो लगता है
शिकायत करें/पूछें
कि यह किसने किया?
जीवन-भर
इसी दोहरे गणित में
हम जीते हैं
और
समझ नहीं पाते
कि अच्छा-बुरा
चाहा-अनचाहा
अपने लिए सब
हम ही करते हैं
अपनी मौत की इबारत
अपने हाथों
हम ही लिखते है

आकाश

रात आती है
सारा आकाश
तारों से
भर जाता है
दिन होते ही
मानो सब
झर जाता है
इसमें सोचो
तो सोचते ही रहो
हाथ क्या आता है?
जो समझते हैं
वे समझते हैं
कि डूबते/ऊगते
सितारे हैं
आकाश
अकेला था
अकेला ही
रह जाता है।

'पगडंडी सूरज तक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

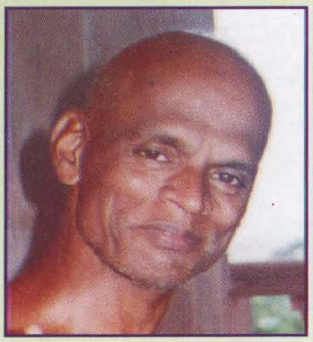

मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ

१

गुदगुदेदार
मृदुल मखमली
सेज पर भी
जब
फीज नजर आती हैं
तब
कहना होगा
कि
वैराग्य की किरणें
फूट रही हैं

२

हर दरवाजे पर
लटकते ताले
हमें
मौन रूप से
संदेश सुनाते हैं
कि
इंसान की
अमूल्य धरोहर
विश्वास लुट चुका है
आश्चर्य की बात तो यह है
आज मंदिरों के
दरवाजों पर
ताले लटकते नजर आते हैं
पर यह मत समझना
कि
भगवान् का विश्वास
लुट चुका है

३

हे
अनेकांत को सुनने वालो
और
सुनाने वालो
थोड़ा ध्यान दो
एकांत की
शरण लिए बिना
इन पतित आत्माओं का
उद्धार कैसे संभव है?
इस बात का ज्ञाता
वही हो सकता है
जो अनेकांत को
जानता है।

प्रस्तुति - प्रो० रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org